मध्यस्थता प्रशिक्षण मॉड्यूल

एम.सी.पी.सी. प्रशिक्षण मॉड्यूल पर आधारित एवं अनुवादित

म.प्र. राज्य विधिक सेवा प्रधिकरण, जबलपुर

(574, साउथ सिविल लाइन्स, पचपेड़ी)

फोन: 0761–2678352, 2624131 फैक्स: 0761–2678537 ईमेल: mplsajab@nic.in

अध्याय– 1

परिचय

यद्यपि दस्तावेज अल्प है, तथापि यह माना जाता है कि लगभग हर समुदाय, देश और संस्कृति का अनौपचारिक विवाद के समाधान के विभिन्न तरीको के उपयोग का एक लंबा इतिहास रहा है। इन प्राचीन पद्धतियों में से कई ने प्रक्रियात्मक विशेषताओं को उस प्रक्रिया के साथ साझा किया, जो समकालीन मध्यस्थता के रूप में संगठित की गई थी। भारतवर्ष में, अन्य देशों की तरह, मध्यस्थता की उत्पत्ति एक स्पष्ट ऐतिहासिक अभिलेख की कमी के कारण अस्पष्ट है। इसके अतिरिक्त, विगत 250 वर्षों में भारत में उपनिवेशीकरण के कारण भी विवाद समाधान की स्वदेशी प्रक्रियाओं के आधिकारिक अभिलेखों की कमी है। नीचे दी गई जानकारी को बहुत बिखरे स्वरूप में मध्यस्थता के बहुत प्रारंभिक रूप में भारत के उत्तर वैदिक काल से प्राप्त किया जा सकता है। आदिवासी समुदायों ने भारत सहित दुनिया के विभिन्न हिस्सों में सदियों से विभिन्न प्रकारों की विवाद समाधान तकनीकों का प्रयोग किया है। चीन में पुरातन काल से चले आ रहे शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व के सामाजिक सिद्धान्त पर आधारित विवादों को सुलझाने के लिए शासन द्वारा प्रायोजित मध्यस्थता का व्यापक पैमाने पर उपयोग किया गया है। अमेरिका के मूल निवासी अमेरिकी उपनिवेश के बहुत पूर्व से अपनी स्वयं की विवाद समाधान प्रक्रिया को अपनाने के लिए जाने जाते है।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य :–

जैसा कि मुल्ला के हिंदू विधि में अभिलिखित है, प्राचीन भारत ने वैदिक काल से, लगभग ४००० से १००० वर्ष ईसा पूर्व से विधि की खोज शुरू की और यह संभव है कि वैदिक ऋचाओं में से कुछ की रचना 4000 ईसा पूर्व से पहले की अवधि में की गई हो। प्राचीन आर्य बहुत ही परिश्रमी और सरल लोग थे जो जीवन आनंद से भरे थे और उनके पीछे संस्कारी जीवन और विचार का युग था। उन्होंने प्रारंभिक रूप से पवित्र प्रज्ञा, तर्क (कारण) और विवेक का अलिखित कानून लागू किया, जो उनके अनुसार स्वर्ग और पृथ्वी को शासित करता था। यह मध्यस्थता के प्रथम प्रादुर्भावित दर्शनों में से एक था –प्रज्ञा, तर्क (कारण) एवं विवेक, तथा यह प्रादुर्भावित दर्शन पश्चिमी देशों में आज भी प्रचलित है।

दुर्लभ रूप से उपलब्ध प्राचीन भारतीय साहित्य कई सदियों से लोगों के सांस्कृतिक सह–अस्तित्व को प्रतिबिंबित करता है। इस वास्तविकता ने कई सहभागी विवाद समाधान प्रक्रियाओं को आधुनिक मध्यस्थता प्रक्रिया में अपनाने के लिए बाध्य किया है। वैदिक युगान्त के समीप, सत्य की खोज में विधानसभाओं एवं परिषदों में दार्शनिक एवं विधिक

विचार विमर्श किया गया जिन्हें अब संगोष्ठियों के रूप में वर्णित किया जाता है। भारतवर्ष पुरातन 5000 वर्षों से अधिक की सांस्कृतिक गाथाओं में से एक है तथा हाल ही के लगभग 1000 वर्षो का इतिहास है, जिसके दौरान ईरानी पठार, मध्य एशिया, अरब, अफगानिस्तान द्वारा आक्रमण किया गया था और पश्चिम भारतीय संस्कृति ने इन आक्रमणों के परिवर्तनों और प्रभावों को आत्मसात कर उल्लेखनीय नस्लीय और सांस्कृतिक ताना बाना उत्पन्न किया। 29 भारतीय राज्यों में पृथक–पृथक और भिन्न सामाजिक तथा सांस्कृतिक परंपराएं, प्रथाएं और धर्म हैं। वैदिक युग का अनुसरण, धर्म शास्त्र (आचार संहिता) के युग में हुआ इस अवधि के दौरान विद्वान विधिवेत्ताओं ने मूल विधियों के दर्शन को विकसित किया। उनके विद्वत्तापूर्ण संभाषणों में विभिन्न समुदायों की विद्यमान परंपराएं और प्रथाएं अभिज्ञात की गई जिनमें विवादों के निराकरण की गैर–प्रतिकूल तकनीकी प्रणालियां समाहित थी। एक उदाहरण अधिकरण है जो एक प्रतिभाशाली विद्वान याज्ञवल्क्य द्वारा खोजा और स्थापित किया गया, जिसे कुला (KULA) के नाम से जाना जाता है, जो कि परिवार, समुदाय, जनजातियों, जातियों अथवा नस्लों के सदस्यों के बीच उत्पन्न विवादों को व्यवहत करता है। अन्य अधिकरण जो श्रेणी (SHRENI) के नाम से जाना जाता है, शिल्पकारों का एक व्यापारसंध होकर समान व्यापार का अनुगामी है, उनके आंतरिक विवादों को व्यवहत करता है। पुगा (PUGA) वाणिज्य की किसी भी शाखा में व्यापारियों का एक समरूप संघ था। याज्ञवल्क्य के दिनों में व्यापार, उद्योग और वाणिज्य की अभूतपूर्व वृद्धि और प्रगति हुई थी और कहा जाता है कि भारतीय व्यापारियों ने सात समंदरों के पार भी अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्य के बीज रोपित कर दिए थे। एक अन्य विद्वान पाराशर के अभिमत में कुछ निश्चित प्रश्नों/विवादों को परिषद अथवा संगठन अथवा विद्वानों की एक सभा के निर्णयों से निर्धारित किया जाना चाहिए। इन संगठनों में प्रकरणों को न्याय, साम्य एवं शुद्ध अंतःकरण के सिद्धान्तों के आधार पर निर्णित करने की शक्ति निहित थी। विवाद समाधान के इन विभिन्न तंत्रों को स्थानीय और ग्राम प्रशासन के मामलों तथा व्यापारियों, श्रमिक निकायों, बैंकरों और शिल्पकारों को प्रभावित करने वाले मामलों में पर्याप्त स्वायत्तता दी गई थी। वाणिज्यिक निकायों के सदस्यों और व्यापारियों के संघों के मामले तय करने के लिए घरेलू मंचों द्वारा मध्यस्थता का आधुनिक विधायी सिद्धांत भारत में प्राचीन प्रथागत कानून में इसकी उत्पत्ति का पता लगाता है। पवित्र अंतःकरण द्वारा मान्य एवं जन सामान्य द्वारा अनुसरित परंपराओं एवं प्रथाओं के अनुसार मामले तय किए गए। परिषद ने स्वैच्छिकता के एक मजबूत तत्व के साथ विवाद समाधान की भागीदारी की आधुनिक अवधारणा को मान्यता दी, जो आधुनिक मध्यस्थता का एक ओर संस्थापक सिद्धांत है। बौद्ध धर्म ने मध्यस्थता को समस्याओं के समाधान के सबसे बुद्धिमान तरीके के रूप में प्रतिपादित किया। बुद्ध ने कहा, ''ध्यान ज्ञान लाता है, मध्यस्थता की कमी अज्ञानता। अच्छी तरह से जानिए कि क्या आपको आगे बढ़ाता है और क्या आपको पीछे ले जाता है। वह चुनें जो बुद्धिमत्ता की ओर ले जाता है।'' यह बौद्ध सूत्र इस सिद्धांत की स्वीकार्यता को दर्शाता है कि मध्यस्थता अतीत में रहने के बजाय भविष्य पर ध्यान केंद्रित करती है। प्राचीन

भारतीय न्यायविद पतंजलि ने कहा, यह निर्णय लेने की अपेक्षा कि कौन सही था और कौन गलत, उन लोगों के लिए मध्यस्थता में तेजी से प्रगति आती है जो सबसे कठिन प्रयास करते हैं। यह एक अभिलिखित तथ्य है कि जटिल मामलों को राजा के न्यायालयों में नहीं बल्कि राजा के मध्यस्थ द्वारा हल किया गया था। मुगल शासन के दौरान भी, शासक अकबर अपने मध्यस्थ मंत्री बीरबल पर निर्भर थे। सबसे प्रसिद्ध मामला तब था जब दो महिलाओं ने एक बच्चे के मातृत्व का दावा किया था, मध्यस्थ ने बच्चे को दो हिस्सों में काटने और उसके शरीर को विभाजित कर हर महिला को आधा देने का सुझाव दिया, असली मां ने बच्चे की जान बचाने के लिए अपना दावा छोड़ दिया जबकि नकली मां विभाजन के लिए सहमत हुई। बच्चे को असली मां को दे दिया गया। यद्यपि यह आधुनिक मध्यस्थता का एक पूर्ण विकसित उदाहरण नहीं था, तथापि यह हित आधारित बातचीत का एक उदाहरण है जहां निष्पक्ष तृतीय पक्ष दोनों पक्षों की अंतर्निहित आवश्यकताओं और चिंताओं की पहचान खोजता है। यह व्यापक रूप से स्वीकार्य है कि एक ग्राम पंचायत, अर्थात पाँच बुद्धिमान व्यक्तियों को एक समाधानकारी तथा निर्णय लेने वाले निकाय के रूप में मान्यता प्राप्त और स्वीकार किया जाता था। कई तरह की प्राचीन विवाद समाधान प्रक्रियाओं में से पंचायत द्वारा कुछ मध्यस्थता के लक्षणों को और कुछ विवाचन के लक्षणों को साझा किया गया।

जैसे–जैसे समाज के आकार और जटिलता में वृद्धि हुई, अनौपचारिक निर्णय लेने की प्रक्रियाएं अधिक संरचित हो गई और उन्होंने धीरे–धीरे एक औपचारिक न्याय वितरण प्रणाली का आकार ले लिया। विवादों की ऐसी समाधान प्रणाली के पहले विकसित हुए बिना, जो समाज में शांति और सद्भाव को बनाए रखने तथा व्यापार और वाणिज्य को कुशलता से बढ़ाते रहने में समर्थ हो, समाज वास्तव में आकार व जटिलता में बड़ा नहीं हो सकता था।

संयुक्त राज्य अमेरिका में मध्यस्थता कई विशिष्ट दिशाओं में विकसित हुई है। 1960 में नस्लीय तनाव और एकीकरण मुद्दों के परिणामस्वरूप सामुदायिक मध्यस्थता का उदय हुआ। उन मुद्दों को हल करने के लिए प्रतिवेश न्याय केंद्र स्थापित किए गए थे। बाद में, परस्पर आपसी विवादों, पारिवारिक विवादों और अन्य विवादों के लिए सामुदायिक मध्यस्थता का विस्तार हुआ, जहां मुद्दे विशिष्टतया पारस्परिक थे। यह देखते हुए कि मध्यस्थता, संतोषजनक समझौता परिणामों की एक उच्च दर प्रदान कर सकती है यदि यह विधिक अधिकारी तंत्र से पृथक हो, यह दृष्टिकोण प्रतिपादित किया गया कि मध्यस्थता समुदाय–आधारित और विधिक प्रणाली से स्वतंत्र होनी चाहिए। 1980 के दशक में निजी मध्यस्थता को अपनाकर बीमा कंपनियों ने बीमा दावों को अनौपचारिक रूप से और तेजी से हल करने के लागत लाभों का अनुभव किया। निजी मध्यस्थता ने निजी/स्वतंत्र मध्यस्थों, गैर–लाभकारी मध्यस्थता कार्यक्रमों और अभिकरणों के उद्गम और लाभकारी मध्यस्थता प्रदाताओं सहित कई तरीकों से पकड़ बनाई। निजी मध्यस्थता, पूर्व–मुकदमेबाजी विवादों, मुकदमेबाजी विवादों, और हाल ही में, वाणिज्यिक और अंतर्राष्ट्रीय विवादों पर लागू की

गई। न्यायालय उपाबद्ध मध्यस्थता, जो कि 1970 और 1980 के दशक में प्रायोगिक उपयोग का विषय थी, 1990 के दशक में महत्वपूर्ण रूप से विस्तारित होना प्रारंभ हुई। इस विचारधारा से निष्कर्ष निकाला गया कि मध्यस्थता, विधिक प्रणाली का एक विस्तार होना चाहिए, यहां तक कि मध्यस्थता को न्यायालयों में मुकदमेबाजी के संकीर्ण विषयों के प्रभावी साधन के रूप में भी देखा जाना चाहिए। वर्तमान में, न्यायालय उपाबद्ध मध्यस्थता को कई न्यायालयों द्वारा विचारण और अपीलीय स्तर पर प्रस्तावित किया जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में मध्यस्थता के तीनों प्रकार, सामुदायिक मध्यस्थता, निजी मध्यस्थता एवं न्यायालय उपाबद्ध मध्यस्थता, विवादित पक्षों की आवश्यकताओं को पूर्ण करने, पनपने, और सहवर्ती होने के लिए जारी हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिका में वैकल्पिक विवाद समाधान के उपयोग में एक महत्वपूर्ण मोड़ 1976 में वकीलों, न्यायविदों और शिक्षाविदों के एक राष्ट्रव्यापी सम्मेलन में हुआ, जिसे पाउंड सम्मेलन कहा जाता था। यह सम्मेलन, जेलों में अति–भीड़, न्यायालयों में लंबी देरी, और मुकदमेबाजी की अत्यधिक लागत के कारण न्याय तक पहुंच के अभाव की तात्कालिक समस्याओं को संबोधित करने के लिए आयोजित किया गया था। ''मल्टी–डोर कोर्ट–हाउस'' की नई अवधारणा ने उत्पन्न मुकदमेबाजी के विकल्पों की आवश्यकता और ''प्रतिवेश न्याय केंद्र'' के महत्व को सुदृढ़ किया। हार्वर्ड के प्रोफेसर फ्रैंक सैंडर द्वारा उद्भूत मल्टी–डोर कोर्ट–हाउस की अवधारणा, एक परिदृश्य की कल्पना करती है जिसमें एक असंतुष्ट पक्ष सिर्फ न्यायालय के प्रवेश द्वार पर एक कियोस्क पर जा सकता है जहां एक सेवा प्रदाता, विवादी को वैकल्पिक या पारंपरिक विवाद समाधान प्रक्रिया प्रदत्त करने वाले द्वारों में से एक के लिए निर्देशित करेगा। प्रोफेसर सैंडर द्वारा इसे विवाद के लिए मंच के रूप में वर्णित किया गया। इस प्रकार से विधिक व्यवस्था, न्यायतंत्र के हाथों में मध्यस्थता सहित वैकल्पिक प्रक्रियाओं को प्रदान करने का उत्तरदायित्व प्रदत्त करते हुए, वादकारियों को सबसे संतोषजनक परिणाम प्राप्त करने में मदद कर सकती है। विवाद का समाधान करने की अपेक्षा विवादकारियों को अपने समाधान पर पहुंचने में तटस्थ सहायता करने का विचार प्रस्तुत किया गया। प्रोफेसरों उरी, ब्रेट और गोल्डबर्ग के अभिमत में हितों का सामंजस्य कम खर्चीला था और गहन छिपे हुए विवादों की जांच करने, रचनात्मक समाधान तैयार करने और व्यापार–विवादों को सुलझाने के लिए न्यायिक प्रक्रिया की तुलना में अधिक संतोषजनक था।

भारत में मध्यस्थता

मध्यस्थता, सुलह और विवाचन, उनके पहले के रूपों में ऐतिहासिक रूप से वर्तमान एंग्लो–सैक्सन कानून की प्रतिकूल व्यवस्था की तुलना में अधिक प्राचीन हैं। मध्यस्थता और विवाचन के विभिन्न रूपों ने भारत में पूर्व–ब्रिटिश शासन के दौरान व्यवसायियों के बीच काफी लोकप्रियता हासिल की। महाजन, जो कि सम्मानीय, निष्पक्ष एवं विवेकपूर्ण व्यवसायी थे, मध्यस्थता के द्वारा व्यापारियों के मध्य उत्पन्न विवाद को सुलझाते थे। वे

व्यापार केंद्रों पर व्यापार संघ के सदस्यों के बीच विवादों में मध्यस्थता करने के लिए सहर्ष उपलब्ध थे। संघ के संविधान में यह प्रावधानित किया गया था कि कोई व्यापारी विवाद में मध्यस्थता कराए बिना यदि न्यायालय का सहारा लेता है तो उसकी सदस्यता समाप्त कर दी जाएगी। यह एक एकीकृत व्यावसायिक अनुमोदन था। भारत के पश्चिम प्रांत गुजरात में प्रचलित यह अनौपचारिक प्रक्रिया मध्यस्थता और विवाचन का संयोजन था, जिसे वर्तमान में पश्चिम दुनिया में मेड–अरब के रूप में जाना जाता है। इस प्रकार की मध्यस्थता को व्यापार जगत में व्यापक स्वीकृति होने के उपरांत भी कोई वैधानिक अनुमोदन प्राप्त नहीं था। विभाजित भारतीय शासकों पर इंग्लैंड की ईस्ट–इंडिया कंपनी ने नियंत्रण प्राप्त किया और राजनीतिक आक्रामकता से अपने स्पष्ट व्यावसायिक उद्देश्य को विकसित किया। भारतवर्ष को 1753 तक ब्रिटिश उपनिवेश में परिवर्तित कर दिया गया और सन 1775 तक भारत में ब्रिटिश प्रणाली की अदालतें स्थापित कर दी गई। अंग्रेजों ने स्थानीय स्वदेशी प्रक्रिया को अनदेखा किया और इस अवधि में न्यायालयों की प्रक्रिया को अंग्रेजी विधि की तत्कालीन न्यायालयीन प्रक्रिया अनुसार ढाला। जबकि अंग्रेजी मूल्यों जिनमें सुस्पष्ट निर्णय की आवश्यकता थी तथा भारतीय मूल्यों जिनमें पक्षकारों के अपने मध्य विवादों का समझौते के किसी रूप के माध्यम से निराकरण करने के लिए प्रोत्साहन था, के मध्य मत भिन्नता थी।

ब्रिटिश शासन के 250 वर्षों में अंग्रेजी न्यायप्रणाली धीरे–धीरे प्राथमिक न्यायप्रणाली बन गई। यहां तक कि इंग्लैंड में भी, सामंतवादी युग के दौरान जब कृषि आधारित अर्थव्यवस्था प्रभावी थी, इसका निर्माण हुआ। जब तक भारत एक उपनिवेश बना रहा इस प्रणाली ने प्रतिष्ठित और न्याय के एकमात्र प्रतीक के रूप में अपनी जड़ों को समृद्ध एवं मजबूत किया। पश्चिमी भारत में व्यापारिक संगठनों द्वारा सफलतापूर्वक अपनाए गए स्वदेशी स्थानीय रीति–रिवाज/परंपराओं, समुदाय आधारित मध्यस्थता एवं सुलह प्रक्रियाओं को भेदभावपूर्ण एवं पक्षकारों को अपने हितों के लिए न्यायालयों तक जाने के अधिकार से वंचित करने वाला माना गया।

ब्रिटिश न्यायालय धीरे–धीरे अपनी अखंडता के लिए पहचाने जाने लगे और उन्होंने लोगों का विश्वास अर्जित कर लिया। यहां तक कि वर्ष 1947 में भारत की स्वतंत्रता के बाद भी भारतीय न्याय व्यवस्था को दुनियाभर में राष्ट्र के गौरव के रूप में घोषित किया गया।

21 वीं शताब्दी में जबकि वाणिज्य, व्यापार और उद्योग ने प्रभावशाली रूप से विस्तारित होना प्रारंभ कर दिया था, ब्रिटिश न्याय प्रणाली ने सम्मान और गरिमा को बनाए रखते हुए त्वरित न्याय प्रदत्त किया। स्वतंत्रता अपने साथ संविधान, मौलिक एवं व्यक्तिगत अधिकारों के लिए जागरूकता, राष्ट्र के व्यापार, वाणिज्य और उद्योग में सरकारी भागीदारी, संसद और राज्य विधानसभाओं की स्थापना, सरकारी निगमों, वित्तीय संस्थानों की स्थापना, तेजी से बढ़ते अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्य और व्यापार में सार्वजनिक क्षेत्र की

भागीदारी लेकर आई। सरकार एक प्रमुख पक्षकार के रूप में सामने आई। रोजगार के अतिवृहद अवसर उत्पन्न हुए। बहुपक्षीय जटिल व्यवहारिक वाद, स्थानीय सीमाओं से परे व्यापार के अवसरों में विस्तार, जनसंख्या वृद्धि, नए अधिकारों और उपायों को बनाने वाले बहुसंख्यक नए अधिनियमों एवं अदालतों के एकमात्र न्यायिक मंच पर लोकप्रिय निर्भरता बढ़ने के परिणामस्वरूप मामलों की संख्या में विस्फोट हुआ। अपर्याप्त अधोसंरचनीय सुविधाओं ने मौजूदा तंत्र में प्रकरणों की विशाल मात्रा के भार को कुशलतापूर्वक एवं प्रभावी ढंग से संभालने की अक्षमता को उजागर किया। लोग वर्षों से कतारों में प्रतीक्षा करने और पीढ़ी दर पीढ़ी मुकदमें चलाने की बजाए मुकदमेबाजी से बचने लगे या अतिरिक्त न्यायिक उपायों का सहारा लेने लगे।

न्यायालय में बढ़ती भीड़ एवं न्याय प्राप्ति के संबंध में दुनिया के लगभग सभी लोकतांत्रिक देशों ने समान समस्या का सामना किया। लगभग 30 वर्ष पूर्व संयुक्त राज्य अमेरिका प्रथम राज्य था, जिसने विधि में प्रबल सुधार किया और ऑस्ट्रेलिया ने भी इसका अनुसरण किया। यूनाईटेड किंगडम ने भी अपनी विधि प्रणाली के हिस्से के रूप में वैकल्पिक विवाद समाधान को अपनाया। यूरोपीय संघ भी सदस्य राज्यों के बीच वाणिज्यिक विवादों के समाधान के लिए मध्यस्थता का समर्थन करता है।

भारत में मध्यस्थता की कानूनी मान्यता

भारत में मध्यस्थता की अवधारणा को पहली बार औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 में विधायी मान्यता प्राप्त हुई। अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत नियुक्त किए गए सुलहकर्ताओं पर समझौता कराने और औद्योगिक विवाद निपटान को बढ़ावा देने का दायित्व सौंपा गया। अधिनियम के अंतर्गत सुलह की कार्यवाही के लिए विस्तृत प्रक्रियाएँ निर्धारित की गई थीं।

1879 के प्रारंभिक दौर में विवाचन ने एक विवाद समाधान प्रक्रिया के रूप में मान्यता प्राप्त की और 1908 की सिविल प्रक्रिया संहिता में भी स्थान प्राप्त किया। सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 89 में वर्णित विवाचन के मूल प्रावधान को 1940 में मध्यस्थता अधिनियम के निर्माण के परिणामस्वरूप निरसित कर दिया गया था। भारतीय विधायिका ने विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 को अधिनियमित करते हुए राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण के रूप में भारत के मुख्य न्यायाधीश के संरक्षण में एक केंद्रीय प्राधिकरण बनाया। केंद्रीय प्राधिकरण में यह कर्त्तव्य वेष्ठित किया गया कि वह निम्न कृत्यों का निर्वहन करेः–

- बातचीत, विवाचन और सुलह के माध्यम से विवादों के निराकरण को प्रोत्साहित करना।
- न्यायालय या किसी भी प्राधिकरण या न्यायाधिकरण के सामने किसी भी मामले के संचालन में कानूनी सेवाएं उपलब्ध कराने के लिए नीतियों और नियमों को बनाना।
- इस उद्देश्य के लिए अत्यंत प्रभावी और लाभप्रद योजनाऐं तैयार करना।
- अपने निपटान अनुसार निधियों का उपयोग करना तथा उसे अधिनियम के अंतर्गत नियुक्त राज्य और जिला प्राधिकरणों को आवंटित करना।
- विधिक सेवाओं के क्षेत्र में अनुसंधान आरंभ करना।
- विधिक सेवाओं की योजनाओं के कार्यान्वयन के लिए स्वैच्छिक संस्थानों को विशिष्ट योजनाओं के अंतर्गत सरकार द्वारा अनुदान प्रदान करने की सिफारिश करना।
- विधिज्ञ परिषद के साथ विधिक प्रशिक्षण और शैक्षिक कार्यक्रमों को विकसित करना और विश्वविद्यालय, विधि महाविद्यालयों और अन्य संस्थानों में विधिक सेवा क्लीनिक स्थापित करना।
- विधिक सेवाओं को बढ़ावा देने के कार्य में संलिप्त शासकीय और अशासकीय अधिकरणों के साथ समन्वय कर कार्य करना।

भारतीय संसद ने 1996 में मध्यस्थता और सुलह अधिनियम बनाया, जिसके अंतर्गत अनुबंधित अथवा अननुबंधित विधिक संबंध से उत्पन्न विवादों एवं उनसे संबंधित सभी अनुषांगिक कार्यवाहियों की सुलह के लिए विस्तृत प्रावधान किए गए। इस अधिनियम के अंतर्गत सुलह कार्यवाहियों की शुरुआत, सुलहकर्ताओं की नियुक्ति, सुलहकर्ताओं के नाम की सिफारिश या सुलहकर्ताओं की नियुक्ति के लिए उपयुक्त संस्था की सहायता, सुलहकर्ता को कथन की प्रस्तुति तथा पक्षकारों के मध्य विवादों के संबंध में समझौता वार्ता हेतु पक्षकारों की सहायता करने हेतु सुलहकर्ता की भूमिका के बारे में प्रावधानित किया गया।

1999 में, भारतीय संसद ने सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 में धारा 89 को समाहित करते हुए व्यवहार प्रक्रिया संहिता संशोधन अधिनियम पारित किया, जिसके अंतर्गत न्यायालय में लंबित मामलों को वैकल्पिक विवाद समाधान केन्द्र, जिसमें मध्यस्थता भी सम्मिलित थी, को भेजे जाने का प्रावधान किया गया। यह संशोधन 1 जुलाई, 2002 से प्रभावी किया गया था।

भारत में आर्थिक उदारीकरण की नीतियों की शुरुआत और दुनिया भर में कानून सुधारों की स्वीकृति के बाद से, विधिवेत्ताओं ने निष्कर्ष निकाला है कि मध्यस्थता व्यवहार न्यायालयों में मामलों के लंबित होने की गहन समस्या के समाधान का एक महत्वपूर्ण हिस्सा होना चाहिए। 1995–96 में भारत के सर्वोच्च न्यायालय के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश, श्री ए. एम. अहमदी ने भारतीय सिविल न्याय प्रणाली में देरी की समस्या का समाधान खोजने के लिए भारत–अमेरिका संयुक्त अध्ययन का नेतृत्व किया और प्रत्येक

उच्च न्यायालय को एक अध्ययन दल नियुक्त करने के लिए निर्देशित किया गया जिसने सैन फ्रांसिस्को आधारित संस्था द इंस्टीट्यूट फॉर स्टडी एंड डेवलपमेंट ऑफ लीगल सिस्टम्स (ISDLSI) के प्रतिनिधियों के साथ कार्य किया। प्रत्येक राज्य से जानकारी एकत्र करने के बाद, केंद्रीय अध्ययन दल ने एकत्रित जानकारियों का विश्लेषण कर कुछ ओर ठोस सुझाव दिए तथा भारतीय परिदृश्य के लिए विशेष संदर्भ के साथ सिविल प्रक्रिया संहिता में केस प्रबंधन से संबंधित संशोधन हेतु प्रस्ताव प्रस्तुत किया।

भारत मे मध्यस्थता का उद्भव

मध्यस्थों के लिए पहला विस्तृत प्रशिक्षण वर्ष 2000 में इंस्टीट्यूट फॉर द स्टडी एंड डेवलपमेंट ऑफ लीगल सिस्टम्स (ISDLS) द्वारा भेजे गए अमेरिकी प्रशिक्षकों द्वारा अहमदाबाद में आयोजित किया गया था।इसके पश्चात अहमदाबाद के दो वरिष्ठ अधिवक्ताओं द्वारा स्थापित एक सार्वजनिक धर्मार्थ न्यास माध्यस्तम् मध्यस्थता विधिक शिक्षा एवं विकास संस्थान (Institute for Arbitration Mediation Legal Education and DevelopmentAMLEAD) द्वारा कई उच्च प्रशिक्षण कार्यशालाएं आयोजित की गयीं। 27 जूलाई, 2002 को भारत के प्रधान न्यायाधीश ने अहमदाबाद मध्यस्थता केन्द्र का औपचारिक शुभारंभ किया जो कथित तौर पर भारत का प्रथम अधिवक्ताओं द्वारा प्रबंधकीय मध्यस्थता केन्द्र था। भारत के प्रधान न्यायाधीश ने नवम्बर, 2002 में नई दिल्ली में मध्यस्थता के महत्व और धारा 89 सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रवर्तन की आवश्यकता को समझाने के उद्देश्य से भारत के समस्त राज्यों के उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीशों की बैठक आहूत की। Institute for Arbitration Mediation Legal Education and Development (AMLEAD) एवं गुजरात विधि सोसाईटी ने जनवरी, 2003 में "मध्यस्थता के सिद्वांत और व्यवहार के गहन प्रशिक्षण" हेतु 32 घंटों का सर्टिफिकेट कोर्स प्रारंभ किया। U.S. Educational Foundation in India (USEFI) ने जून, 2003 में जोधपुर, हैदराबाद और बाम्बे में प्रशिक्षण कार्यशालाएं आयोजित कीं। 09 अप्रैल, 2005 को चैन्नई मध्यस्थता केन्द्र का शुभारंभ किया गया और उसने मद्रास उच्च न्यायालय के परिसर में कार्य करना प्रारंभ कर दिया। यह भारत का प्रथम न्यायालय–संबद्ध मध्यस्थता केन्द्र था। दिल्ली न्यायिक अकादमी ने मध्यस्थता प्रशिक्षण कार्यशालाओं की श्रृंखला आयोजित की और अकादमी के परिसर में एक मध्यस्थता केन्द्र खोला गया जिसमें अकादमी के उप निदेशक को मध्यस्थ के रूप में नियुक्त किया गया। दिल्ली उच्च न्यायालय मध्यस्थता एवं सुलह केन्द्र द्वारा नियमित रूप से मध्यस्थता जागरूकता कार्यशालाएं एवं उच्च मध्यस्थता प्रशिक्षण कार्यशालाएं आयोजित की जा रही हैं।

भारत के तत्कालीन प्रधान न्यायाधीश माननीय न्यायमूर्ति श्री आर.सी. लाहोटी के आदेश दिनांक 09 अप्रैल, 2005 द्वारा एम.सी.पी.सी. का गठन किया गया। माननीय न्यायमूर्ति श्री एन. सन्तोष हेगडे उसके प्रथम अध्यक्ष थे। इसमें उच्चतम न्यायालय एवं उच्च

न्यायालय के अन्य न्यायमूर्तिगण, वरिष्ठ अधिवक्तागण एवं सदस्य सचिव राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण सम्मिलित थे। कमेटी ने दिनांक 11 जूलाई, 2005 को आयोजित बैठक में तीस हजारी न्यायालय में न्यायिक मध्यकता का पायलेट प्राजेक्ट आरंभ करने का निर्णय लिया। इसकी सफलता से प्रेरित होकर वर्ष 2006 में कड़कड़डूमा में तथा वर्ष 2009 में रोहिणी में मध्यकता केन्द्रों की स्थापना हुई। एम.सी.पी.सी. द्वारा वर्ष 2008 में बैंगलोर, रांची, इंदौर और चण्डीगढ में चार क्षेत्रीय सम्मेलन आयोजित किये गये।

एम.सी.पी.सी. द्वारा मध्यस्थता से संबंधित नीतिगत मामलों के विकास के संबंध में नेतृत्व किया जा रहा है। समिति द्वारा यह निर्णय लिया गया है कि एक मध्यस्थ के लिए 40 घंटों का प्रशिक्षण लेना तथा 10 वास्तविक मध्यस्थता करना आवश्यक है। विधायी कार्य विभाग द्वारा मध्यस्थता प्रशिक्षण कार्यक्रम, रैफरल न्यायाधीशों के प्रशिक्षण कार्यक्रम, जागरूकता कार्यक्रम तथा प्रशिक्षकों के प्रशिक्षण कार्यक्रम हेतु समिति को अनुदान भी प्रदान किया गया है। उक्त अनुदान सहायता से समिति द्वारा मार्च, 2010 तक देश के विभिन्न भागों में 52 जागरूकता कार्यक्रम/रैफरल न्यायाधीशों का प्रशिक्षण कार्यक्रम एवं 52 मध्यस्थता प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किये गये हैं। लगभग 869 व्यक्तियों ने 40 घंटों का प्रशिक्षण प्राप्त किया है। समिति राष्ट्रीय मध्यस्थता कार्यक्रम को अंतिम रूप देने की प्रक्रिया में है। इसके कार्यों को संस्थागत रूप देने एवं इसे देश में समस्त प्रशिक्षण कार्यक्रमों की शीर्षस्थ संस्था के रूप में परिवर्तित करने के प्रयास भी किये जा रहे हैं।

भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने सलेम बार एसोसिएशन द्वारा प्रस्तुत प्रकरण में नवीन विधिक सुधारों की संवैधानिक वैधता को मान्य ठहराया है तथा अध्यक्ष, भारतीय विधि आयोग न्यायमूर्ति श्री जगन्नाथ राव की अध्यक्षता में व्यवहार न्यायालयों में मध्यस्थता प्रक्रिया एवं नवीन विधि के क्रियान्वयन में आने वाली कठिनाइयों को दूर करने के संबंध में सुझाव देने एवं नियमों की विरचना करने हेतु एक समिति का गठन किया है। विधि आयोग ने मध्यस्थता एवं प्रकरण प्रबंधन पर परामर्श पत्र तैयार किया तथा आदर्श नियमों की विरचना कर वितरित किया। सर्वोच्च न्यायालय ने उन आदर्श नियमों को मान्य किया तथा प्रत्येक उच्च न्यायालय को उन्हें विरचित करने हेतु निर्देशित किया। भारतीय विधि आयोग ने 3 एवं 4 मई, 2003 को नई दिल्ली में प्रकरण प्रबंधन, सुलह एवं मध्यस्थता पर एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित किया जो अत्यंत सफल रहा। दिल्ली के जिला न्यायालयों में उनके न्यायाधीशों को मध्यक के रूप में प्रशिक्षण प्रदान करने एवं न्यायालय–संबद्ध मध्यस्थता केन्द्र स्थापित करने में सहायता करने हेतु आई.एस.डी.एल.एस को आमंत्रित किया गया। दिल्ली उच्च न्यायालय ने स्वयं का अधिवक्ता–प्रबंधकीय मध्यस्थता एवं सुलह केन्द्र प्रारंभ किया। कर्नाटक उच्च न्यायालय ने भी एक न्यायालय–संबद्ध मध्यस्थता एवं सुलह केन्द्र प्रारंभ किया और आई.एस.डी.एल.एस. की सहायता से उनके मध्यस्थों को प्रशिक्षित किया। अब तक न्यायालय–संबद्ध मध्यकता केन्द्र इलाहाबाद, लखनऊ, चण्डीगढ, अहमदाबाद, राजकोट, जामनगर, सूरत तथा भारत के अनेक अन्य जिलों के विचारण न्यायालयों में प्रारंभ किये जा चुके हैं।

न्यायालय के माध्यम से आज्ञापक मध्यस्थता को अब विधिक मान्यता प्राप्त हो चुकी है। न्यायालय–संबद्ध मध्यस्थता एवं सुलह केन्द्र अब भारत के अनेक न्यायालयों में स्थापित हो चुके हैं तथा न्यायालयों ने उक्त केन्द्रों को प्रकरण निर्दिष्ट करना प्रारंभ कर दिया है। न्यायालय–संबद्ध मध्यस्थता में मध्यस्थता सेवाएं न्यायालयों द्वारा उसी न्यायिक व्यवस्था के

अहम हिस्से के रूप में प्रदान की जाती हैं जबकि न्यायालय द्वारा निर्दिष्ट मध्यस्थता में न्यायालय मामले को एक मध्यक को भी निर्दिष्ट कर सकता है। न्यायालय–संबद्ध मध्यस्थता की एक विशेषता यह है कि उसमें न्यायाधीश, अधिवक्ता और वादकारी सहभागी हो जाते हैं जिससे उन्हे यह अनुभूति होती है कि न्यायदान की व्यवस्था में उक्त सभी तीनों कारकों द्वारा बातचीत के माध्यम से समझौता किया गया है। जब एक न्यायाधीश प्रक्रिया पर संपूर्ण परिवीक्षण रखते हुए न्यायालय–संबद्ध मध्यकता सेवा को कोई प्रकरण निर्दिष्ट करता है तब किसी को भी यह महसूस नहीं होता कि व्यवस्था तंत्र ने प्रकरण का परित्याग कर दिया है। न्यायाधीश व्यवस्था तंत्र के भीतर ही एक मध्यस्थ को प्रकरण निर्दिष्ट करता है। वही अधिवक्ता जो एक प्रकरण में उपस्थित होते हैं, अपना पक्षपत्र धारित करते हुए उसी ढांचे के अंतर्गत मध्यकों के समक्ष भी अपने मुवक्किलों का प्रतिनिधित्व करना जारी रखते हैं। वादकारियों को विवादों के समाधान में स्वयं सहभागितापूर्ण भूमिका अदा करने का अवसर प्रदान किया जाता है। यह इस प्रक्रिया की सार्वजनिक स्वीकार्यता का भी सृजन उसी प्रकार करता है जिस प्रकार समय पर खरा उतर चुके न्यायालय व्यवस्था ने सत्यनिष्ठा और निष्पक्षता के कारण लोक विश्वास प्राप्त किया है और अपना नियंत्रण रखता है तथा एक अतिरिक्त सेवा प्रदान करता है। न्यायालय–संबद्ध मध्यकता में विवादों के समाधान हेतु न्यायालय केन्द्रीय संस्था होता है। जहां वैकल्पिक विवाद समाधान प्रक्रिया की देखरेख न्यायालय द्वारा की जाती है वहां कम से कम उन मामलों में जो न्यायालयों के माध्यम से निर्दिष्ट किये जाते हैं, न्यायदान का प्रयास अच्छी तरह से समन्वित किया जा सकता है।

न्यायालयों के नियंत्रण, मार्गदर्शन और परिवीक्षण के अंतर्गत वैकल्पिक विवाद समाधान सेवाएं अधिक प्रमाणिक एवं सहज स्वीकार्य होंगी। इससे यह अनुभूति सुनिश्चित होगी कि मध्यस्थता न्यायालय व्यवस्था की पूरक है, प्रतिद्वंदी नहीं। इस व्यवस्था को न्यायाधीशों का एक सकारात्मक और अनुकूल समर्थन प्राप्त होगा जो मध्यस्थों को व्यवस्था के अभिन्न अंग के रूप में स्वीकार्य करेंगे। यदि मध्यस्थता के लिए निर्देश न्यायाधीश द्वारा न्यायालय–संबद्ध मध्यस्थता सेवाओं को किया जाएगा तब मध्यस्थता प्रक्रिया अधिक शीघ्रतापूर्ण और सामंजस्यपूर्ण हो जाएगी। इससे न्यायालय और मध्यस्थ के मध्य मामले की गति तीव्र और उद्देश्यपूर्ण किया जाना सुकर होगा। इसके अतिरिक्त उचित मामलों में कुछ विवाद्यकोंको मध्यस्थता के लिए निर्दिष्ट करना तथा शेष को विचारण हेतु छोड़ देना सुकर होगा। न्यायालय–संबद्ध मध्यस्थता यह अनुभूति देगी कि मध्यस्थता न्यायालय का स्वयं का प्रकरणों का भार कम कर संभाले जाने योग्य किये जाने के हित साधन में सहायक होता है इसलिए मध्यस्थता के लिए निर्देश एक इच्छित निर्देश होगा। इस प्रकार न्यायालय–संबद्ध मध्यकता उसी व्यवस्था तंत्र द्वारा प्रक्रिया में निरंतरता रखते हुए एक अतिरिक्त साधन उपलब्ध कराएगी तथा इन सबके ऊपर इस व्यवस्था में न्यायालय एक मुख्य संस्था रहेगा। इससे न्यायालय और समुदाय के मध्य एक सार्वजनिक–निजी भागीदारी की भी स्थापना होगी। इस लोक धारणा से कि न्यायालय और मध्यस्थता सुविधा साथ–साथ कार्य करते हैं, संतोषजनक एवं तीव्र गति से समझौते होंगे।

अध्याय–2
संघर्ष समझना

संघर्ष की प्रकृति

यह उचित होगा कि मध्यस्थता का अध्ययन संघर्ष की प्रकृति और संघर्ष के समाधान के सिद्धांतों के परीक्षण से प्रारंभ किया जाए जो मध्यस्थता प्रक्रिया की नींव है। हम सर्वप्रथम संघर्ष को समझने का प्रयत्न करेंगे, तत्पश्चात् बातचीत के द्वारा संघर्ष को स्थापित करने की आवश्यकता का परीक्षण करेंगे और अंत में संघर्ष के प्रभावी समाधान के एक सहायक वार्तालाप के रूप में मध्यस्थता का अध्ययन करेंगे। यह इसलिए आवश्यक हो जाता है क्योंकि हम संघर्ष को कैसे समझते हैं यह इस तथ्य का निर्धारण करता है कि हम किस प्रकार मध्यस्थता करते हैं।

जीवन व्यक्तियों, समूहों और राष्ट्रों के मध्य अनेक मतभेदों को समाहित करता है। उनमें सांस्कृतिक मतभेद, व्यक्तित्व संबंधी मतभेद, विचार संबंधी मतभेद, पारिस्थितिक मतभेद होते हैं। मतभेदों का समाधान न होने से असहमति होती है। असहमति से समस्याएं पैदा होती है। असहमति का समाधान न होने पर विवाद पैदा होते हैं। विवादों का समाधान न होने पर संघर्ष होते हैं। संघर्षों का समाधान न होने पर हिंसा हो सकती है और युद्ध भी हो सकता है। इसे तनाव का सातत्य कहते हैं और यह बहुधा निम्नलिखित रेखाचित्र द्वारा चित्रित किया जाता है:**तनाव का सातत्य**

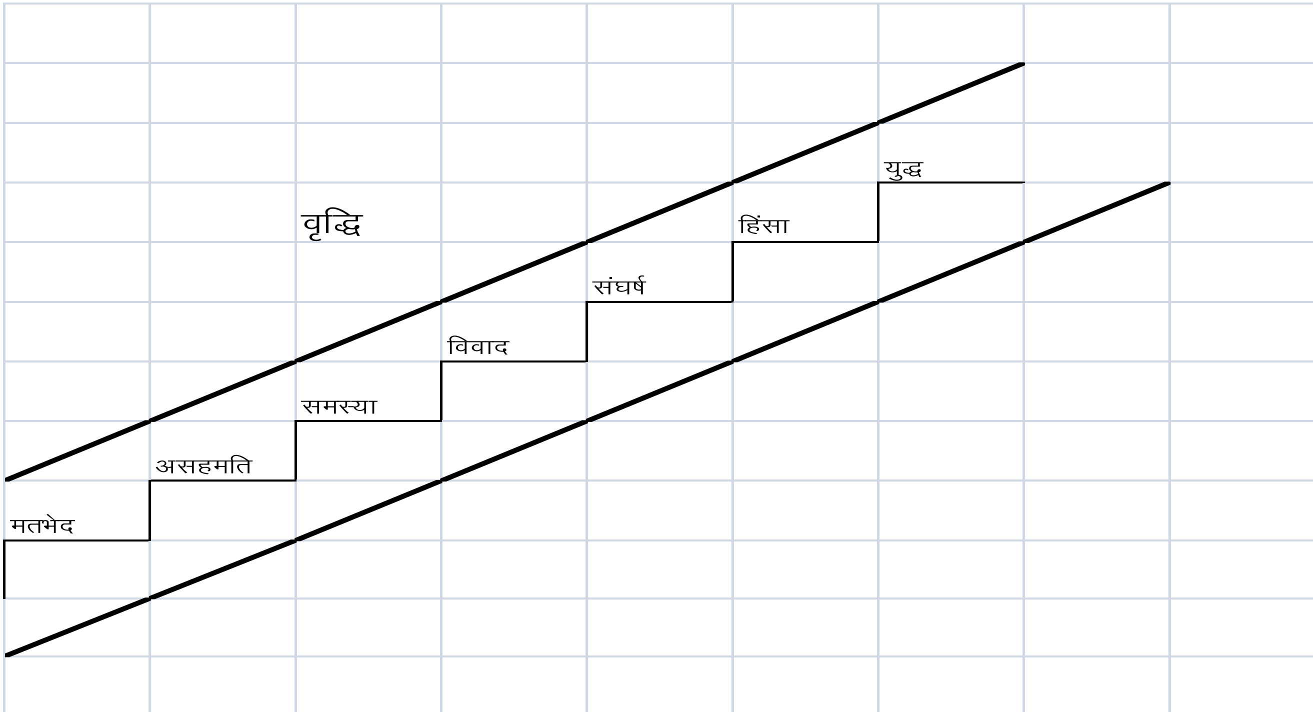

हम संघर्ष की प्रकृति का अध्ययन तीन व्यापक आयामों में करेंगे। (01) धमकी की आशंका जो इसे बाध्य करती है (संघर्ष का मूल)। (02) क्या होता है जब इसमें वृद्धि होती है (संघर्ष की कुण्डली)। (03) संघर्ष के तीन प्राथमिक पहलू जिन पर मध्यकता के दौरान ध्यान देने की आवश्यकता है (संघर्ष का त्रिकोण)। इन तीन आयामों को समझने से हमें संघर्ष के प्रति अपने स्वयं के एवं उन पक्षकारों के, जिनके साथ हम व्यवहार करते हैं, दृष्टिकोण को समझने में सहायता मिलती है।

संघर्ष के आयाम

1) संघर्ष का मूल

संघर्ष के मूल संबंधी आरेख से यह दर्शित होता है कि किसी संघर्ष के मूल में व्यक्तियों, समूहों, समुदायों या राष्ट्रों से संबंधित धमकी की आशंका होती है। यह धमकी की आशंका तब उत्पन्न होती है जब किसी असहमति, पीडा, प्रतिद्वंदिता अथवा अन्याय से मानव गरिमा, व्यक्तिगत प्रतिष्ठा, व्यक्तिगत सुरक्षा, मनोवैज्ञानिक आवश्यकता, व्यावसायिक मूल्य, सामाजिक प्रास्थिति, वित्तीय सुरक्षा, सामुदायिक चिंता, धार्मिक सदस्यता अथवा राष्ट्रीय सम्मान के किसी पहलू को खतरा पैदा होता है। यह सूची विस्तृत नहीं है तथा केवल खतरों के व्यापक क्षेत्रों को प्रकट करती है। जब तक पक्षकार बातचीत अथवा मध्यस्थता प्रारंभ नहीं करते तब तक वे प्रतिपक्ष द्वारा एवं स्वयं के भीतर से धमकाये जाते हैं। उनके भीतर भय, संदेह, बेबसी, निराशा, शर्मिंदगी, क्रोध, आघात, अपमान, अविश्वास, मायूसी, प्रतिशोध और अनेक मिश्रित भावनाएं होती है जिन पर ध्यान देने की आवश्यकता है। इन भावनाओं पर ध्यान देने में विफलता पक्षकारों को उनके विवादों का समाधान करने से राकेगी।

संघर्ष का मूल एवं संघर्ष की कुण्डली

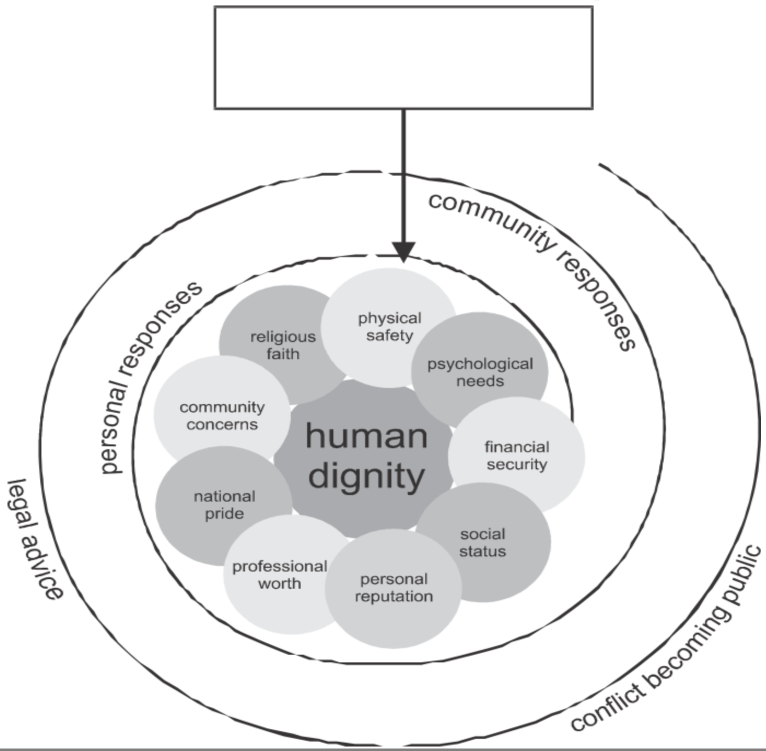

2) संघर्ष चक्र

जब संघर्ष गहरा जाता है तब शुरूआती तनाव बाहर की ओर फैलने लगता है जो व्यक्तियों, रिश्तों, कार्यों, निर्णयों, संस्थाओं और समुदायों को प्रभावित करने लगता है। संघर्ष का पक्षकारों के बीच से निकलकर बाहर फैल जाना ही संघर्ष चक्र कहलाता है।

व्यक्तिगत प्रतिक्रियाएँ

संघर्ष का तनाव, चिन्ता, विरोध, क्रोध, अवसाद, और यहाँ तक की रिश्तों में प्रतिशोध की भावनाओं को भड़काता है। दूसरे पक्ष का कुछ भी कार्यवाही करना या न करना संदेहास्पद लगने लगता है। धीरे–धीरे लोग समस्या को अपने नजरिए से देखने और उसका हल अपने अनुसार चाहने के प्रति कठोर हो जाते हैं। इस कारण उनका स्पष्टता से सोच पाना कठिन हो सकता है। अतः पक्षकारों को वास्तव में एक ऐसा मंच चाहिए जो न सिर्फ उनके विवाद अपितु उनकी भावनाओं को समझकर उस पर बात कर सकें। पक्षकारों की भावनाओं को समझे बगैर वास्तविक समाधान खोजना कठिन है।

समुदाय की प्रतिक्रियाएँ

भावनाओं का समुदाय व संस्कृति से आंतरिक संबंध है। यद्यपि एक संस्कृति व समुदाय के सभी सदस्यों की व्यक्तिगत प्रतिक्रिया सदैव एक सी नहीं हो सकती। कोई विवाद अपने समुदाय एवं सांस्कृतिक सन्दर्भों से प्रभावित हो जाता है। जब विवाद आसपास के अन्य लोगों को प्रभावित करने लगता है तो फिर वे या तो उसके साथ हो जाते हैं या उससे परे हट जाते हैं। जब परिवार और समुदाय भी विवाद में शामिल हो जाते हैं तो उनके गुट बन जाते हैं। इसके बाद भी यह आवश्यक नहीं है कि देश के किसी एक क्षेत्र के परिवार के विवाद का समाधान उस देश के अन्य भाग के लिए भी समाधान के तौर पर उपयुक्त हो। इसी प्रकार किसी महानगरीय क्षेत्र के विवाद के लिए निकाला गया समाधान और ग्रामीण क्षेत्र के विवाद के लिए निकाला गया समाधान एक जैसे नहीं हो सकते। यह जरूरी नहीं है कि शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करने वाले किसी स्वैच्छिक संगठन के संदर्भ में निकाला गया कोई समाधान किसी सूचना प्रौद्योगिकी फर्म के लिए भी लागू हो।

विधिक परामर्श

किसी झगड़े में प्रायः विधिक सलाह महत्वपूर्ण हो जाती है। यह तनाव में और वृद्धि कर सकती है एवं पक्षकार परिस्थितियों पर स्वयं नियंत्रण करने में अक्षम हो सकते हैं। किसी तटस्थ व्यक्ति की सहायता से पक्षकारों में परस्पर संवाद के द्वारा सर्वमान्य संभावित समाधान निकाला जा सकता है।

संघर्ष का सार्वजनिक होना

कभी–कभी संघर्ष सार्वजनिक हो जाता है। प्रत्येक पक्ष कठोर रूख बना लेता है और इस कार्य के लिए सहयोगी इकठ्ठे कर लेता है। इससे विवाद वास्तविक पक्षकारों के नियंत्रण से निकलकर बढ़ सकता है। यह जनता व मीडिया का ध्यान भी आकर्षित कर सकता है। नये और पुराने प्रमुख पक्षकारों के आपसी संबंध जटिल हो जाते हैं जिससे असली झगड़े को सुलझाना और कठिन हो जाता है।

3) संघर्ष त्रिकोण

संघर्ष त्रिकोण, अपनी तीनों भुजाओं में संघर्ष के तीन प्राथमिक पहलुओं को क्रमबद्ध करता है : यथा **लोग, प्रक्रिया एवं समस्या**। यह संघर्ष त्रिकोण ही संघर्ष को समझने व चर्चा करने हेतु आधारभूत ढांचा है।विवाद त्रिकोण के प्रत्येक पहलू के तत्व भिन्न–भिन्न व्यक्तियों, परिस्थितियों एवं समस्याओं के लिए अपेक्षित सुभिन्न समाधानों के अनुरूप अलग–अलग होते हैं।

1 लोग :–

किसी संघर्ष से व्यवहार करने में लोगों से बर्ताव करना शामिल है। लोग विभिन्न व्यक्तिगत, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक पृष्ठभूमियों से आते हैं। उनका विविध परिस्थितियों से बर्ताव करने हेतु अपना विशिष्ट व्यक्तित्व, रिश्ते, धारणायें एवं दृष्टिकोण होता हैं।

2 प्रक्रिया :–

प्रत्येक संघर्ष में उसके पक्षकारों के मध्य बातचीत एवं संपर्क का अपना तरीका होता है। संघर्ष अपने आपमें एक दूसरे से इस तरह से भिन्न होते हैं कि उनमें से कोई भी संघर्ष गहरा सकता है, फैल सकता है, खत्म हो सकता है या हल हो सकता है।

3 समस्या :–

हर विवाद के अपने घटक होते हैं। इसके अंतर्गत विवाद में शामिल विभिन्न पक्षों के सभी मुद्दे, हित, उनके द्वारा अपनाया गया रूख और विवाद के प्रति उनकी अपनी धारणायें समाविष्ट है।

एकनॉलेजमेन्ट ऑफ कॉन्सेप्ट्स एण्ड आईडियाज ऑफ द कंफ्लिक्ट कोर, स्पाइरल एण्ड ट्रायंगल : ''द मीडिएटर्स हेण्डबुक'' बाय जेनिफर ई. बियर विद एलीन स्टीफ डेवलप्ड बाय फ्रेंडस कंफ्लिक्ट रिज़ॉल्यूशन प्रोग्राम रिवाइज्ड एण्ड एक्सपेन्डेड तृतीय संस्करण, न्यू सोसायटी पब्लिशर्स

विवाद त्रिकोण – 1

- विगत इतिहास
- मान्यताएँ, अर्थ
- रिश्ते
- भावनाएँ
- आचरण
- योग्यता
- व्यक्तित्व

- लोग मुद्दों एवं भावनाओं को कैसे सम्प्रेषित करते हैं।
- ढॉचा, प्रणाली एवं प्रक्रिया
- संघर्ष में व्यवहार करने व निर्णय लेने के मानदण्ड
- निर्णय लेना
- भूमिकाएँ, कार्य

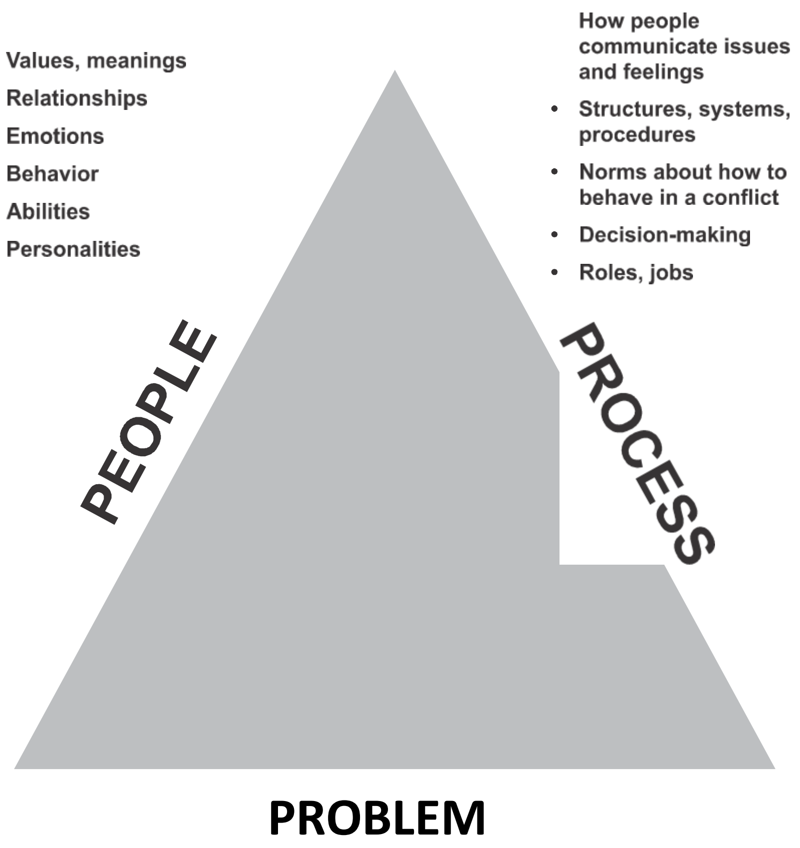

- तथ्य
- स्थितियॉ
- मुद्दे
- घटनाओं के परिणाम

- धारणायें
- हित, आवश्यकताएँ
- समाधान
- संभावित नतीजों के परिणाम

विवाद त्रिकोण – 2

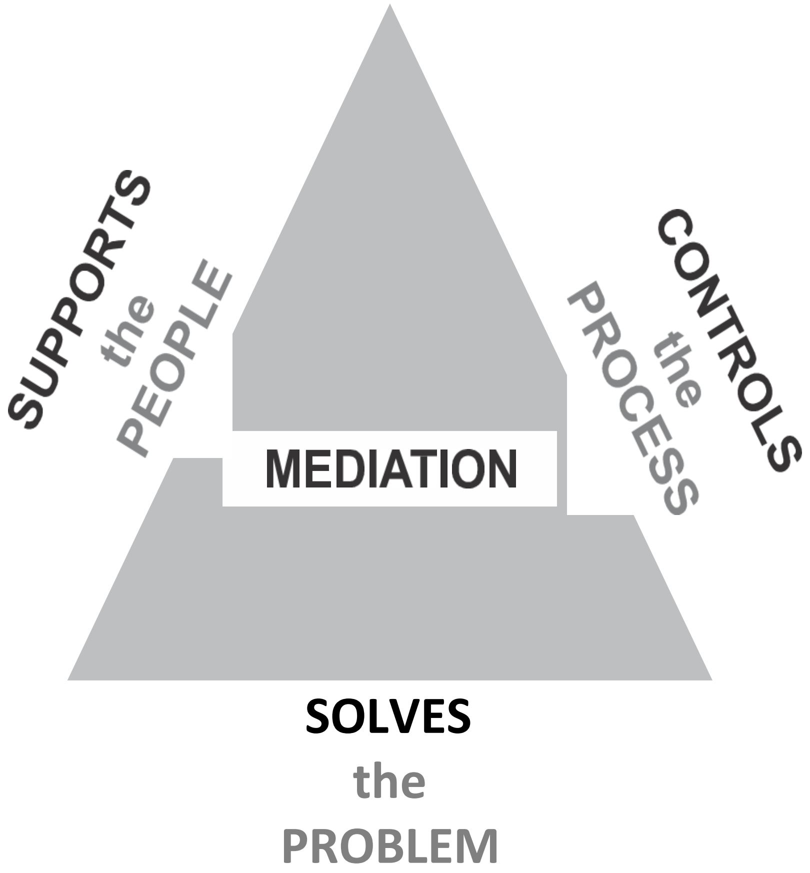

सिर्फ समस्या समाधान के बजाए उससे उपर जाकर विवाद को देखना

यदि पक्षकार संघर्ष त्रिकोण के हर पहलु पर चर्चा करने के योग्य हैं तो उनकी भावोत्तेजक अवस्था को शांत करके उनके मूल हितों को खतरा पहुँचाने वाली समस्याओं के बारे में परस्पर बातचीत व संबोधन के तरीकों में बदलाव लाना चाहिए तब न सिर्फ उनका विवाद सुलझ जाएगा अपितु उनकी मानसिकता एवं ह्रदय भी परिवर्तित हो जायेंगे। इसका अर्थ है कि मध्यस्थता सर्वोत्तम तब होगी जब वह विवाद को मात्र संभालने या समस्या सुलझाने से आगे जाकर की जाये।

संघर्ष के कारण और उन पर बातचीत

संघर्ष सुलझाने में पहला कदम उसके कारण की पहचान करना है। एक बार कारण का पता चलते ही अगला कदम उस पर बातचीत करने की रणनीति बनाने का होता है। किसी संघर्ष के कारणों व उस पर बातचीत करने की रणनीति के कुछ उदाहरण निम्नलिखित है :–

कारण रणनीति	रणनीति
जानकारी	
• जानकारी का अभाव	• महत्वपूर्ण तथ्यों पर सहमति लाना

गलत जानकारी	• तथ्यों को एकत्रित करने की प्रक्रिया पर सहमति लाना
• जानकारी की अलग–अलग व्याख्या	• सभी जानकारियों व व्याख्याओं को विचार में लेने पर सहमति लाना
हित और अपेक्षायें	
• लक्ष्य, आवश्यकताएँ	• स्थिति से ध्यान हटाकर पक्षकारों के हितों पर लाना
• व्यक्तिगत अनुभूतियॉं, धारणाएँ	• विकल्पों का विस्तार करना • सृजनात्मक समाधान खोजना • धारणाओं को स्पष्ट करना
आपसी रिश्ते	
• कम सम्पर्क	• बुनियादी नियम स्थापित करना
• बार–बार नकारात्मक व्यवहार	• गलतफहमियॉं दूर करना
• गलतफहमियॉं, रूढ़िवादी धारणाएँ	• आपसी सम्पर्कों को सुधारना
• अविश्वास	• प्रक्रिया और कार्यप्रणाली पर सहमति लाना
• संघर्ष का इतिहास	• अपनी बात पर कायम रहना • पुरानी बातों को छोड़कर भविष्य को बेहतर करने पर ध्यान केंद्रित करना
संरचनात्मक संघर्ष	
• संसाधन	• स्वामित्व एवं नियंत्रण को पुनः निर्दिष्ट करना
• शक्ति, सत्ता	• निष्पक्ष एवं सर्वमान्य निर्णय लेने की प्रक्रिया स्थापित करना
• समय की पाबंदी	• बदली हुई भूमिकाओं को स्पष्ट परिभाषित करना
मान्यतायें	
• सुझावों के मूल्यांकन के अलग–अलग मानदण्ड	• उत्तम समन्वय वाले लक्ष्यों की खोज करना
• जीवन जीने के तरीके, विचारधारा एवं धर्म की विभिन्नता	• पक्षकारों को सहमत या असहमत होने की अनुमति • आपस में निष्ठा उत्पन्न करना

अध्याय –3

मध्यस्थता की संकल्पना

1. मध्यस्थता एक, स्वैच्छिक, पक्षकार केन्द्रित और संरचित बातचीत की प्रक्रिया है। जहाँ एक तटस्थ तृतीय पक्ष, पक्षकारों के विवादों का विशिष्ट तरीके के सम्प्रेषण एवं समझौतावार्ता तकनीक का प्रयोग करते हुए सौहार्द्रपूर्ण समाधान निकालने में सहायता करता है। मध्यस्थता में पक्षकारों को समझौता की शर्ते तय करने, समझौता करने या न करने का अधिकार रहता है। यद्यपि मध्यस्थ उनके मध्य बातचीत एवं समझौतावार्ता को सुगम बनाता है तथापि पक्षकारों का विवाद के नतीजे पर सदैव नियंत्रण बना रहता है।

1.1 मध्यस्थता स्वैच्छिक है। पक्षकारों को स्वयं यह अधिकार बना रहता है कि वे कब समझौता करें एवं विवाद के समझौते की शर्ते क्या होंगी। यहाँ तक कि यदि न्यायालय मामला मध्यस्थता हेतु निर्दिष्ट करता है या अनुबन्ध या विधि में मध्यस्थता अपेक्षित है तब भी समझौता करने एवं उसकी शर्तें तय करने का निर्णय सदैव पक्षकारों के पास होता है। स्वयं निर्धारण का अधिकार मध्यस्थता प्रक्रिया का आवश्यक तत्व है। इसकी परिणिति स्वयं पक्षकारों द्वारा निर्मित समझौते में होती है इसलिए वह उन्हें स्वीकार्य होता है। मध्यस्थता के परिणाम पर सर्वोच्च नियंत्रण पक्षकारों का होता है। कोई भी पक्षकार मध्यस्थता समाप्ति के पूर्व किसी भी प्रक्रम पर बिना कोई कारण बताये मध्यस्थता कार्यवाही से अलग हो सकता है।

1.2 मध्यस्थता पक्षकार केन्द्रित बातचीत की प्रक्रिया है। पक्षकार मध्यस्थता प्रक्रिया के केन्द्र बिन्दु होते हैं न कि तटस्थ मध्यस्थ। मध्यस्थता पक्षकारों को अपने विवादों को सुलझाने हेतु उनकी सक्रिय और प्रत्यक्ष सहभागिता को प्रोत्साहित करती है। यद्यपि मध्यस्थ, अधिवक्ता एवं अन्य प्रतिभागी भी मध्यस्थता में सक्रिय भूमिका रखते हैं किन्तु मुख्य भूमिका पक्षकार ही निभाते हैं। उन्हें विवाद की तथ्यात्मक पृष्ठभूमि स्पष्ट करने, मुद्दों को चिन्हित करने, बुनियादी हितों, सहमति के विकल्पों को उत्पन्न करने एवं समझौता के बारे में अंतिम निर्णय लेने हेतु सक्रिय रूप से प्रोत्साहित किया जाता है।

1.3 यद्यपि मध्यस्थता प्रक्रिया अनौपचारिक है अर्थात् यह साक्ष्य एवं प्रक्रिया के औपचारिक नियमों से शासित नहीं होती तथापि यह कोई संक्षिप्त या तात्कालिक/अविचारित प्रक्रिया नहीं है। मध्यस्थता प्रक्रिया का अपना ढांचा और औपचारिक स्वरूप है जिसके स्तर स्पष्टतया चिन्हित किये जा सकते हैं तथापि मध्यस्थता प्रक्रिया के लचीलेपन की सीमा के स्तर निम्नलिखित हैं।

1.4 सारतः मध्यस्थता एक सहायता प्राप्त बातचीत की प्रक्रिया है। मध्यस्थता में तथ्यात्मक/विधि दोनों मुद्दों के साथ विवाद के अर्न्तनिहित कारणों पर बात होती

है। इस प्रकार मध्यस्थता मोटे तौर पर तथ्यों, विधि और पक्षकारों के अर्न्तनिहित हितों जैसे कि व्यक्तिगत हित, व्यापार/व्यवसाय, परिवार, समाज और समुदाय के हितों पर केन्द्रित होती है। मध्यस्थता का लक्ष्य दोनों पक्षों को स्वीकार्य ऐसे समाधान खोजना है जो क्षकारों की जरूरतों, इच्छाओं और हितों की संतुष्टि पर्याप्त रूप से एवं वैध तरीके से कर सके।

1.5 मध्यस्थता एक कुशल, प्रभावी, शीघ्र तथा सुविधाजनक एवं कम खर्चीली प्रकिया है जिसमें विवादों का निराकरण गरिमापूर्ण माहौल में आपसी सम्मान और सद्भाव के साथ किया जाता है।

1.6 मध्यस्थता का संचालन एक निष्पक्ष मध्यस्थ के द्वारा किया जाता है जिसमें मध्यस्थ एक तृतीय पक्ष होता है। मध्यस्थ सदैव निरपेक्ष, स्वतंत्र रूप से प्रक्रिया संचालित करता है और दोनों पक्षों को विवाद के समाधान में सहायता करता है तथा पक्षकारों को मार्गदर्शन करके विवाद के समाधान तक पहुंचने में सहायता करता है। मध्यस्थ का कोई व्यक्तिगत हित एवं विचार मध्यस्थता प्रक्रिया को प्रभावित नहीं करता है।

1.7 मध्यस्थता प्रक्रिया में मध्यस्थ दोनों पक्षों के साथ मिलकर सुविधाजनक रूप से कार्य करता है और विवाद के समाधान हेतु पक्षकारों को बातचीत के लिये सहमत करता है। मध्यस्थ पक्षकारों पर अपना निर्णय थोपकर विवाद का समाधान नहीं करता है अपितु दोनों पक्षों को सुविधाजनक तरीके से आपसी सामंजस्य के साथ समाधान हेतु प्रोत्साहित करता है तथा पक्षकारों के बीच बातचीत को बढ़ावा देकर सौहार्दपूर्ण अंतिम निपटारे के लिये दोनों पक्षों को प्रेरित करता है एक मध्यस्थ का कार्य दोनों पक्षों की सहायता कर उनको मामले के गुण–दोष के आधार पर संभावित अंतिम समाधान तक पहुंचाना है।

1.8 मध्यस्थ के द्वारा विशेष संवाद कौशल के साथ दोनों पक्षों से तार्किक बातचीत करके बाधाओं को दूर करके तथा पारस्पिरिक स्वीकार्य समाधान खोजने के लिये कार्य किया जाता है जिससेदोनों पक्षों को पारस्पिरिक स्वीकार्य अंतिम समाधान निकाला जा सकें।

1.9 मध्यस्थता एक प्राईवेट एवं गोपनीय प्रक्रिया है जो जनता के लिये खुली हुई नहीं रहती हैं। मध्यस्थता के दौरान पक्षकारों के द्वारा दिया गया कोई भी कथन पक्षकारों की बिना लिखित सहमति के किसी सिविल या अन्य कार्यवाही में प्रकट नहीं किया जायेगा। मध्यस्थता के दौरान दिया गया कथन या प्रस्तुत सूचना या पेश किया गया कोई दस्तावेज किसी अन्य कार्यवाही में अग्राह्य एवं अप्रकटीय है। मध्यस्थता के दौरान की गई किसी स्वीकृति या संस्वीकृति का अन्य कार्यवाही में उपयोग नहीं किया जा सकता है। यद्यपि कोई सूचना जो किसी पक्ष द्वारामध्यस्थ को प्रक्रिया के दौरान दी जाती है वह सूचना दूसरे पक्ष को प्रकट नहीं की जा सकती है। जब तक विशेष रूप से प्रथम पक्ष द्वारा इसके लिये अनुमति न दी गई

हो। मध्यस्थता प्रक्रिया में पक्षकारों के मध्य तथ्यों एवं सूचनाओं के आदान–प्रदान का कोई अभिलेख नहीं रखा जाता है।

1.10 न्यायालय में मामला लंबित रहने के दौरान जब प्रकरण को मध्यस्थता प्रक्रिया के लिये रैफर किया जाता है एवं किसी समझौते पर पक्षकार पहुंच जाते है तब ऐसा समझौता या सुलह अनुबंध पक्षकारों के मध्य लिखित एवं हस्ताक्षरित होना चाहिए एवं उचित आदेश हेतु उस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिए जिस न्यायालय में मामला लंबित है। प्री–लिटिगेशन स्टेज पर हुआ समझौता एक अनुबंध होता है जो पक्षकारों पर बंधनकारी एवं प्रभावी होता है।

1.11 मध्यस्थता के दौरान विवाद के समाधान में असफल होने पर मीडिऐटर द्वारा रिपोर्ट में असफलता का कारण लेख नहीं किया जायेगा केवल रिपोर्ट में नॉट सेटल्ड अर्थात् सफल नहीं हुआ का उल्लेख किया जायेगा।

1.12 मध्यस्थ को किसी कार्यवाही में गवाही देने के लिये या मध्यस्थता के दौरान आदान–प्रदान हुये तथ्य प्रकट करने के लिये न्यायालय के समक्ष नहीं बुलाया जा सकता है।

1.13 मध्यस्थता प्रक्रिया के दौरान पक्षकारगण एक सौहार्दपूर्ण समझौते पर सहमत होने के लिये विधिक पात्रता या दायित्व को भी नजरअंदाज करने के लिये स्वतंत्र है।

1.14 किसी विशेष मामलें में मध्यस्थता संदर्भित विवाद तक ही सीमित नहीं होनी चाहिए बल्कि मध्यस्थता के दौरान विवादित विषय से संबंधित एवं सुसंगत अन्य विवादों को भी शामिल करते हुये समाधान की ओर बढ़ना चाहिए।

मध्यस्थता के प्रकार

1. **न्यायालय द्वारा भेजा गया मीडिएशन**:– इसके अंतर्गत वह मामलें आते है जो न्यायालय के समक्ष लंबित है और ऐसे मामलें जिन्हें न्यायालय द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 की धारा 89 अंतर्गत मध्यस्थता के लिये रैफर किया गया है।

2. **प्राईवेट (निजी) मीडिएशन** :–प्राईवेट मध्यस्थता में योग्य मध्यस्थ न्यायालय के लिये अपनी सेवाऐं प्रस्तुत करते है। जिनके लिये शुल्क निर्धारित है एवं आम जनता के लिये व्यवसायिक संस्थानों के लिये एवं सरकारी संस्थाओं के लिये भी मध्यस्थता प्रक्रिया के द्वारा योग्य मध्यस्थ विवादों के समाधान निकालने का प्रयास करते है। निजी मध्यस्थता का उपयोग न्यायालय में लंबित मामलों और प्री–लिटिगेशन अर्थात् न्यायालय में वाद दायर करने के पूर्व के विवादों के निपटारे के लिये भी किया जा सकता है।

मध्यस्थता के लाभ

1. पक्षकारों के पास निम्नानुसार मध्यस्थता प्रक्रिया का **नियत्रंण** रहता हैं :– 1) क्षेत्र –(मध्यस्थता प्रक्रिया के दौरान विवाद का संदर्भ या मुद्दों की शर्तों को सीमित या विस्तारित किया जा सकता है।) तथा ii) परिणाम –(मध्यस्थता में अनुबंध की शर्तों को तय करने का अधिकार रहता है। चाहे मध्यस्थता सफल रहें या असफल रहें।)

1.1 मध्यस्थता एक प्रकार की **भागीदारी** है। पक्षकारों को अपना मामला अपने शब्दों में प्रस्तुत करने का अवसर मिलता है और समाधान हेतु बातचीत में प्रत्यक्ष रूप से भाग लेने का अवसर रहता है।

1.2 मध्यस्थता प्रक्रिया **स्वैच्छिक** है। और कोई भी पक्ष प्रक्रिया से बाहर आ सकता है यदि उसे लगता है कि मध्यस्थता से उसे कोई मदद नहीं मिल रही है। मध्यस्थता की स्वनिर्धारण प्रक्रिया अंतिम निपटारे तक पहुंचने को सुनिश्चित करती है।

1.3 मध्यस्थता प्रक्रिया **शीघ्र,प्रभावी** तथा **कम खर्चीली** है।

1.4 मध्यस्थता प्रक्रिया **सरल** और **लचीली** है इसे पक्षकारों के अनुरूप संशोधित किया जा सकता हैं। प्रक्रिया का लचीलापन पक्षकारों को दिन–प्रतिदिन की गतिविधियों को साथ–साथ करने की अनुमति देता है।

1.5 मध्यस्थता की प्रक्रिया **अनौपचारिक, सद्भावी** तथा **अनुकूल** वातावरण में संचालित की जाती है।

1.6 मध्यस्थता एक **निष्पक्षप्रकिया** है। मध्यस्थ **निष्पक्ष, तटस्थ** एवं **स्वतंत्र** होता है। मध्यस्थ यह सुनिश्चित करता है कि यदि पक्षकारों के बीच पहले से मौजूदअसमान रिश्ते हैं तो उनकेआधार पर बातचीत प्रभावित न हो।

1.7 मध्यस्थता की प्रक्रिया **गोपनीय** है।

1.8 मध्यस्थता प्रक्रिया पक्षकारों के बीच बेहतर और प्रभावी **संवाद** के लिये सुविधा प्रदान करती है जो रचनात्मक और सार्थक बातचीत के लिये महत्वपूर्ण है।

1.9 मध्यस्थता पक्षकारों के बीच संबंधों को बनाये रखने और संबंधों को बहाल करने में मदद करती हैं।

1.10 मध्यस्थता प्रक्रिया के दौरान प्रत्येक स्टेज पर **पक्षकारों के लंबी अवधि के हितों** को ध्यान में रखा जाता है जैसे :– विकल्पों की जांच करने में, विकल्पों का मूल्यांकन और पता करने में और विवाद समाधान प्रक्रिया के अंत में वर्तमान और भविष्य पर ध्यान केंद्रित किया जाता है, बीते हुये अतीत पर नहीं। जिससे

पक्षकारों को अपने सभी मतभेदों को व्यापक रूप से समाधान करने का अवसर प्राप्त होता है।

1.11 मध्यस्थता में इस बात पर ध्यान केंद्रित किया जाता है कि विवाद का **समाधान परस्पर रूप से दोनों पक्षों के लिये लाभदायक** हो।

1.12 मध्यस्थता समझौता अक्सर पक्षकारों के बीच **संबंधित प्रकरण का समायोजन/समाधान** होता है।

1.13 मध्यस्थता में विवाद समाधान हेतु **रचनात्मकता** की अनुमति रहती है। पक्षकारगण रचनात्मकता एवं बिना संवाद उपचार स्वीकार कर सकते है, जो उनके दीर्घकालीन अर्न्तनिहित हितों को संतुष्ट करते हो। इसके लिये पक्षकारगण विधिक पात्रता एवं दायित्वों को भी नजरअंदाज कर सकते है।

1.14 जब पक्षकारगण समझौते की शर्तों पर हस्ताक्षर करते है एवं अंर्तनिहित हितों से संतुष्ट हो जाते है तब समझौते का अनुपालन हो जाता है।

1.15 मध्यस्थता विवादों के **अंतिम समाधान को बढ़ावा** देती है। जब विवाद का पूर्ण एवं अंतिम रूप से निपटारा हो जाता है फिर वहां पर किसी अपील, पुनरीक्षण और अन्य कार्यवाही की गुंजाईस नहीं रहती है।

1.16 न्यायालय द्वारा रैफर किये गये मध्यस्थता के मामलों में समझौता होने पर नियामानुसार **न्याय शुल्क वापिसी** की अनुमति रहती है।

अध्याय– 4

न्यायिक कार्यवाही एवं विभिन्न ए.डी.आर. कार्यवाहियों के बीच तुलना

कमांक	न्यायिक प्रकिया	माध्यस्थम	मध्यस्थता
1	न्यायिक प्रक्रिया एक सहायक प्रक्रिया है जिसमें तृतीय पक्ष (न्यायाधीश/अन्य प्राधिकारी) निर्णय करता है।	माध्यस्थम एक अर्धन्यायिक सहायक प्रक्रिया है जिसमें विवाद समाधान हेतु न्यायालय द्वारा या पक्षकारों द्वारा माध्यस्थ की नियुक्ति की जाती है। जो पक्षकारों के बीच विवाद का निपटारा कराता है।	मध्यस्थता एक बातचीत /वार्ता प्रक्रिया है और सहायक प्रक्रिया नहीं है मध्यस्थ प्रक्रिया को सुविधाजनक बनाता है पक्षकारगण विवाद समाधान में प्रत्यक्ष रूप से भाग लेते है एवं समाझौते की शर्तें तय करते है।
2	प्रक्रिया और निर्णय सुसंगत विधि प्रावधानों द्वारा शासित प्रतिबंधित एवं नियत्रंति होते है।	प्रक्रिया और निर्णय माध्यस्थम और सुलह अधिनियम 1996 के प्रावधानों से शासित, प्रतिबंधित एवं नियत्रंति होते है।	प्रक्रिया और समझौता विधिक प्रावधानों द्वारा शासित, प्रतिबंधित एवं नियंत्रित नहीं होते है। इसमें स्वतंत्रता एवं लचीलापन रहता है।
3	निर्णय पक्षकारों पर बंधनकारी होता है।	माध्यस्थम के द्वारा दिया गया अवार्ड पक्षकारों पर बंधनकारी होता है।	यदि पक्षकारगण परस्पर स्वीकार्य अनुबंध पर सहमत हो जाते है, तब पक्षकारगण एक बंधनकारी समझौते पर पहुंचते है।
4	न्यायिक प्रक्रिया विरोधात्मक अर्थात् पक्ष–विपक्ष की प्रकृति की होती है जैसे – पक्षकारों के अधिकार और दायित्व निर्धारित करने में उस पक्षकार की भूतकालीन घटनाओं पर विचार किया जाता है।	प्रक्रिया विरोधात्मक अर्थात् पक्ष–विपक्ष की प्रकृति की होती है पक्षकारो के अधिकार और दायित्व निर्धारित करने पर विचार किया जाता है।	सलाहकारी प्रक्रिया है इसमें पक्षकारों की वर्तमान और भविष्य की स्थिति पर विचार करते हुये विवाद का समाधान आपसी सुलह के आधार पर किया जाता है। पक्षकारों के अधिकार और दायित्व असंगत होते है।
5	पक्षकारों की व्यक्तिगत उपस्थिति या सक्रिय भागीदारी सदैव आवश्यक नहीं।	पक्षकारों की व्यक्तिगत उपस्थिति या सक्रिय भागीदारी सदैव आवश्यक नहीं।	पक्षकारों की व्यक्तिगत उपस्थिति और सक्रिय भागीदारी आवश्यक है।

6	औपचारिक प्रक्रिया जनता के लिये खुली रहती है और प्रक्रिया गत सभी प्रावधानों का कढ़ाई से पालन करना होता है।	औपचारिक प्रक्रिया प्राईवेट रहती है और प्रक्रियागत सभी प्रावधानों का कढ़ाई से पालन करना होता है।	प्राईवेट रूप से गैर न्यायिक और अनौपचारिक तथा सरल और लचीली प्रक्रिया अपनाई जाती है।
7	निर्णय अपील योग्य होता है।	अवार्ड (अधिनिर्णय) को विशेष आधारों पर चुनौती दी जा सकती है।	समझौते की शर्तो के अधीन पारित डिक्री/आदेश अंतिम होता है जो अपील योग्य नहीं है।
8	पक्षकारों के पास एक–दूसरे से सीधे संवाद का कोई अवसर नहीं रहता है।	पक्षकारों के पास एक–दूसरे से सीधे संवाद का कोई अवसर नहीं रहता है।	पक्षकारों के पास एक–दूसरे से सीधे संवाद का सर्वोत्तम अवसर मध्यस्थ की उपस्थिति में रहता है।
9	न्याय शुल्क का भुगतान शामिल रहता है।	न्याय शुल्क का भुगतान शामिल नहीं रहता है।	समाधान समझौते की स्थिति में जो न्याय शुल्क न्यायालय में जमा कराई गई हो वह नियमानुसार वापिसी योग्य होती है।

कमांक	**मध्यस्थता**	**सुलह**	**लोक अदालत**
1	मध्यस्थता एक गैर अधिनिर्णय संबंधी प्रक्रिया है	सुलह एक गैर अधिनिर्णय संबंधी प्रक्रिया है	लोक अदालत एक गैर अधिनिर्णय संबंधी प्रक्रिया है यदि लोक अदालत का गठन विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम 1987 की धारा 19 अंतर्गत किया गया है। लोक अदालत एक सुलहकारी और सहायक प्रक्रिया है यदि लोक अदालत का गठन विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम 1987 की धारा 22बी अंतर्गत किया गया है।
2	स्वैच्छिक प्रक्रिया।	स्वैच्छिक प्रक्रिया।	स्वैच्छिक प्रक्रिया।
3	मध्यस्थ एक तटस्थ तृतीय पक्ष होता है।	सुलहकर्ता एक तटस्थ तृतीय पक्ष होता है।	पीठासीन अधिकारी एक तटस्थ तृतीय पक्ष होता है।
4	अधिवक्ता की सेवाऐ उपलब्ध रहती है।	अधिवक्ता की सेवाऐ उपलब्ध रहती है।	अधिवक्ता की सेवाऐ उपलब्ध रहती है।
5	मध्यस्थता पक्षकार केन्द्रित आपसी वार्तालाप है।	सुलह पक्षकार केन्द्रित आपसी वार्तालाप है।	लोक अदालत में आपसी वार्तालाप/बातचीत का क्षेत्र सीमित है।

6	मध्यस्थ का मुख्य कार्य प्रक्रिया को सुविधाजनक बनाना है।	सुलहकर्ता मध्यस्थ की अपेक्षा प्रक्रिया को सुविधाजनक बनाने से अधिक सक्रियतापूर्वक कार्य करता है।	पीठासीन अधिकारी का कार्य पक्षकारों को प्रेरित करना है।
7.	मध्यस्थता के लिए प्रकरण को रिफर करने के लिए पक्षकारों की सहमति अनिवार्य नहीं है।	सुलह के लिए प्रकरण को रिफर करने के लिए पक्षकारों की सहमति अनिवार्य है।	लोक अदालत के लिए प्रकरण को रिफर करने के लिए पक्षकारों की सहमति अनिवार्य नहीं है।
8.	रिफरल न्यायालय, सहमति की शर्तों के अनुसार आज्ञाप्ति/आदेश पारित करने में व्यवहार प्रक्रिया संहिता 1908 के आदेश 23 नियम 3 के सिद्धांतों का पालन करती है।	सुलह में, सहमति इस प्रकार से प्रवर्तनीय होती है जैसे कि वह, मध्यस्थता एवं सुलह अधिनियम 1996 की धारा 74 के अंतर्गत न्यायालय की आज्ञाप्ति है।	लोक अदालत का अधिनिर्णय व्यवहार न्यायालय की आज्ञाप्ति माना जाता है और विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम 1987 की धारा 21 के अंतर्गत निष्पादन योग्य है।
9.	अपील योग्य नहीं।	आज्ञाप्ति/आदेश अपील योग्य नहीं।	अधिनिर्णय अपील योग्य नहीं।
10.	मध्यस्थता में ध्यान (फोकस)वर्तमान व भविष्य में केंद्रित रहता है।	सुलह में ध्यान (फोकस) वर्तमान व भविष्य में केंद्रित रहता है।	लोक अदालत में भूत व वर्तमान में केंद्रित होता है।
11.	मध्यस्थता विभिन्न चरणों वाली संरचनात्मक प्रक्रिया है।	सुलह भी विभिन्न चरणों वाली संरचनात्मक प्रक्रिया है।	लोक अदालत की प्रक्रिया में मात्र चर्चा व अनुनय सामिल है।
12.	मध्यस्थता में पक्षकार सक्रिय रूप से प्रत्यक्षता शामिल होते हैं।	सुलह में पक्षकार सक्रिय रूप से प्रत्यक्षता शामिल होते हैं।	लोक अदालत में पक्षकार सक्रिय रूप से प्रत्यक्षता इतना अधिक शामिल नहीं होते हैं।
13.	गोपनीयता मध्यस्थता का मर्म है।	गोपनीयता मध्यस्थता का मर्म है।	लोग अदालत में गोपनीयता नहीं रखी जाती है।

न्याय निर्णयन व मध्यस्थता के बीच अंतर दर्शित करने हेतु नाटक मंचन

''पारिवारिक चित्र ''

तथ्यः हाल ही में पिता की मृत्यु, पारिवारिक संपत्ति दो पुत्रों के मध्य छोड़ते हुये हो गई, उनकी माता की मृत्यु पहले ही हो गई थी, इसलिए दोनों पक्षकार एक मात्र जीवित उत्तराधिकारी हैं। उनके पिता की वसीयत, पारिवारिक मकान व उनकी अन्य व्यक्तिगत संपत्तियों के संबंध में स्पष्ट है सब कुछ आधा–आधा विभाजित किया गया है, किन्तु वसीयत में उनके माता–पिता व दादा–दादी का, परिवार का, एक प्रसिद्ध भारतीय चित्रकार के द्वारा बनाया गया मूल चित्र है जो कि जो कि परिवारिक संजोयी हुई धरोहर है को पिता के प्रिय पुत्र को दिये जाने का उल्लेख है। वसीयत पिता के प्रिय पुत्र का उल्लेख नहीं करती है, दोनों भाई इस बात पर सहमत नहीं हो सके हैं कि पिता का प्रिय पुत्र कौन हैं।

अभ्यास : विवाद का निराकरण (i) माध्यस्थम् (Arbitration) और (ii) मध्यस्थता के माध्यम से कीजिए।

अभ्यास (i)

माध्यस्थम् (Arbitration)

प्रथमताः आरबिट्रेटर को यह निश्चय करना होता है कि विवाद का विषय क्या है कौन सा पुत्र (प्रिय पुत्र) की परिभाषा में उपयुक्त बैठता है।

प्रत्येक पक्षकार, आरबिट्रेटर के समक्ष कारण प्रस्तुत करता है कि वह स्वयं को उसके पिता के प्रिय पुत्र होने के तथ्य पर क्यों विश्वास करता है।

आरबिट्रेटर साक्ष्य का मूल्यांकन करता है और निश्चय करता है कि कौन सा पुत्र, प्रिय पुत्र की परिभाषा में उपयुक्त बैठता है। ''चित्र उस पुत्र को दे दिया जाता है।''

समझौता की अनुमति नहीं दी जाती है आरबिट्रेटर को (i) प्रथमताः प्रिय पुत्र की अर्थ के आधार पर और (ii) क्यों वे प्रिय पुत्र हैं इस संबंध में प्रत्येक पक्ष द्वारा प्रस्तुत की गई साक्ष्य के आकलन व तुलना के आधार पर यह निश्चय करना होता है कि कौन सही है और कौन गलत है।

अभ्यास (ii)

मध्यस्थता

मध्यस्थता में मध्यस्थ इसी विषय पर बात–चीत कराता है, मध्यस्थता में पक्षकार विवाद के समाधान को किसी आरबिट्रेटर पर या किसी तटस्थ व्यक्ति पर न छोड़ते हुए स्वयं विवाद के समाधानो की परख कर समाधान निकालते हैं। पक्षकार विवाद के रचनात्मक समाधानों को चुनने के लिए स्वतंत्र होते हैं यहां कोई गलत या सही नहीं होता है और इसलिए मध्यस्थता में यह आवश्यक नहीं है कि कोई एक ही व्यक्ति जीते।

मध्यस्थ को

- आवश्यकताओं को पहचानना है
- विकल्पों का सृजन करना है
- प्रक्रिया को नियंत्रित करना है
- संबंधों को पुर्नस्थापित करना है

अध्याय– 5

मध्यस्थता की प्रकिया

मध्यस्थता एक गतिशील प्रक्रिया है जिसमें मध्यस्थ पक्षकारों को उनके मध्य विवाद का समाधान बात–चीत के आधार पर निकालने के लिए पक्षकारों की सहायता करता है। मध्यस्थ, मध्यस्थता करने में मध्यस्थता के चार व्यवहारिक एवं उपयोगी चरणों से गुजरता है। **प्रथमतः** परिचय और उद्घटनात्मक कथन, **द्वितीयतः** संयुक्त सत्र, **तृतीयतः** प्रथक सत्र व **चतुर्थतः** समाप्ति। ये व्यवहारिक एवं उपयोगी चरण एक अनौपचारिक और लचीले वातावरण में निम्नलिखित विनिर्दिष्ट एवं पूर्व निर्धारित प्रक्रिया का पालन करते हुए पूर्ण किये जाते हैं, ताकि मध्यस्थता प्रक्रिया को गति मिल सके।

परिचय

विवाद को समझना

पक्षकारों के हितों व आवश्यकताओं को गहराई से समझना

विवाद को स्पष्ट करना

विकल्पों का सृजन करना

विकल्पों का मूल्यांकन करना

समझौता होना/नहीं होना

उपरोक्त में से प्रत्येक अवस्था मध्यस्थता प्रक्रिया का आवश्यक तत्व है जिसे अगली चरण की ओर बढ़ने से पूर्व पूर्णतः संतुष्ट कर लिया जाना चाहिए।

अध्याय–6
मध्यस्थता की अवस्थाएँ

मध्यस्थता प्रक्रिया की व्यवहारिक अवस्थाएं हैं–

1) परिचय तथा उद्घाटक कथन

2) संयुक्त सत्र

3) प्रथक सत्र

4) समाप्ति

चरण प्रथम : परिचय व उद्घाटक कथन

उद्देश्य

- निष्पक्षता स्थापित करना
- जागरूक करना व प्रक्रिया को समझाना
- पक्षकारों के साथ घनिष्टता बढाना
- पक्षकारों का भरोसा एवं विश्वास हासिल करना
- परिणामदायी बात–चीत के लिए अनुकूल वातावरण तैयार करना
- पक्षकारों को विवाद के सौहार्द्रपूर्ण समझौते के लिए प्रोत्साहित करना
- प्रक्रिया पर नियंत्रण रखना

मध्यस्था कक्ष में बैठक व्यवस्था

मध्यस्थता प्रक्रिया प्रारंभ होने पर मध्यस्थ को पक्षकारों और/या उनके अभिभाषकों की उपस्थिति सुनिश्चित करेगा।

मध्यस्थता के लिए कोई विनिर्दिष्ट निर्धारित बैठक व्यवस्था नहीं है फिर भी बैठक व्यवस्था में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए:–

- मध्यस्थ पक्षकारों से आंखों से सपर्क कर सके तथा वह पक्षकारों के मध्य प्रभावी संचार को सुगम बना सके।
- पक्षकारों में से प्रत्येक तथा उनके अभिभाषक को साथ में बैठना चाहिए।
- सभी उपस्थित व्यक्ति सहजता, सुरक्षा व आराम का अनुभव कर सके।

परिचय

- प्रारंभ करने के लिए मध्यस्थ, उसका नाम, उसकी विशेषज्ञता उसके व्यवसायिक अनुभव के वर्षो के बारे में बताकर उसका परिचय देगा।
- उसके पश्चात् वह उसकी मध्यस्थ के रूप में नियुक्ति, प्रकरणों को मध्यस्थता के लिए उसको सौंपे जाने और पूर्व में समान प्रकृति के प्रकरणों में सफलता पूर्वक मध्यस्थता किये जाने के बारे में उसके अनुभव यदि कोई हों तो उसकी जानकारी देगा।
- तत्पश्चात् मध्यस्थ, उसके, प्रकरण के किसी भी पक्षकार से उसका कोई संबंध नहीं होने व विवाद में उसका कोई हित न होने की घोषणा करेगा।
- वह विवाद का निराकरण सौहार्द्रपूर्ण हो जाने के संबंध में आशान्वित होना व्यक्त करेगा। उसके ऐसा करने से पक्षकारों में मध्यस्थ की सक्षमता और निष्पक्षता पर पक्षकारों का विश्वास सृजित होगा।
- तत्पश्चात पक्षकारों में से प्रत्येक को स्वयं का परिचय देने के लिए निवेदन करेगा। वह पक्षकारों से और अधिक जानकारी निकाल सकता है तथापि पक्षकारों को सहज होने के लिए उनसे स्वतंत्र होकर बातचीत कर सकता है।
- इसके पश्चात मध्यस्थ अभिभाषक को उनका परिचय देने के लिए निवेदन करेगा।
- मध्यस्थ आवश्यक पक्षकारों से उनकी बातचीत करने व समझौता के संबंध में उनके निर्णय ले सकने कि अधिकारिता व समक्षमता के बारे में सुनिश्चित करेगा।
- मध्यस्थ पक्षकारों और उनके अभिभाषकों से उनकी समय की बाध्यताओं व विषयों के कार्यक्रम के संबंध में चर्चा करेगा।
- यदि कोई कनिष्ठ अभिभाषक उपस्थित है तो मध्यस्थ वरिष्ठ अभिभाषक जिनके लिए एसा कनिष्ठ अभिभाषक कार्य कर रहा है कि जानकारी यह सुनिश्चित करने के लिए लेगा कि ऐसा कनिष्ठ अभिभाषक पक्षकार का प्रतिनिधित्व करने के लिए अधिकृत है या नहीं।

मध्यस्थ के उद्‌घाटक कथन

उद्‌घाटक कथन मध्यस्थता प्रक्रिया की महत्वपूर्ण अवस्था है। मध्यस्थ, पक्षकारों और उनके अभिभाषकों के द्वारा समझ सकने वाली भाषा व तरीके से निम्नलिखित बाते स्पष्ट करेगाः–

- मध्यस्थता की अवधारणा व प्रक्रिया
- मध्यस्थता के चरण
- मध्यस्थ की भूमिका
- अभिभाषक की भूमिका
- पक्षकारों की भूमिका
- मध्यस्थता के लाभ
- मध्यस्थता के आधारभूत नियम

मध्यस्थ मध्यस्थता के निम्नलिखित महत्वपूर्ण पहलुओं पर प्रकाश डालेंगेः—

- स्वैच्छिक
- आत्मनिर्णयायक
- गैर—सहायक
- गोपनीय
- सद्भावना भागीदारी
- समय सीमाबद्ध
- अनौपचारिक और लचीला
- पार्टियों की प्रत्यक्ष और सक्रिय भागीदारी
- पार्टी केंद्रित
- मध्यस्थ की निष्पक्षता और तटस्थता
- अंतिम रूप
- संबंधित विवादों को निपटाने की संभावना
- अलग—अलग सत्रों की आवश्यकता और प्रासंगिकता

मध्यस्थ मध्यस्थता के निम्नलिखित आधारभूत नियमों की जानकारी देगाः—

- आमतौर पर, पक्षकार /वकील को केवल मध्यस्थ को संबोधित करना चाहिये।
- जबकि एक व्यक्ति बोल रहा हैं, अन्य लोग को हस्तक्षेप करने से बचना चाहिये।
- प्रयुक्त भाषा हमेशा विनम्र और सम्मानजनक होना चाहिये।
- प्रक्रिया के लिए पारस्परिक सम्मान और सम्मान बनाए रखा जाना चाहिए।
- मोबाइल फोन बंद होना चाहिये।
- सभी पक्षों को अपने विचार प्रस्तुत करने का पर्याप्त अवसर दिया जाना चाहिये।

अतं में मध्यस्थ इस बात की पुष्टि करेगा कि पार्टियों ने मध्यस्थता प्रक्रिया के आधार भूत नियमों को समझा और उन्हें यदि कोई भ्रम हो तो उनका भ्रम दूर करने का अवसर मिलना चाहिये।

चरण—2 संयुक्त सत्र

उददेश्य

- जानकारी इकट्ठा करें।
- अन्य पक्षों के दृष्टिकोण को सुनने के लिए पार्टियों को अवसर प्रदान करें।

- दृष्टिकोण, संबंधों और भावनाओं को समझें।
- तथ्यों औ मुददो को समझें।
- बाधाओं और संभावनाओं को समझें।
- सुनिश्चित करें कि प्रत्येक प्रतिभागी को महसूस हो कि उन्हें सुना गया है।

प्रकिया

- मध्यस्थ को पक्षकारों को अपने मामलें में कथन करने, दृष्टिकोण, अर्न्त भावनाओं को व्यक्त करने के लिये इस प्रकार आमंत्रित करना चाहिये जिससे वह बिना किसी बाधा या चुनौती के अपनी भावना व्यक्त कर सके। सबसे पहले वादी/याचिकाकर्ता को उसके मामलें/दावें को अपने शब्दों में व्यक्त करने की अनुमति दी जानी चाहिये। तद्परांत उसका अधिवक्ता उसके मामलें को प्रस्तुत करें व मामलें में अंतर्लित विधिक मुद्दों का कथन करें उसके बाद प्रतिवादी/उत्तरदाता अपने मामलें/दावें को अपने शब्दों में बतायें, तदुपरांत प्रतिवादी/उत्तरदाता का अधिवक्ता उसके मामले को प्रस्तुत करे व विधिक मुद्दे जो मामले में अंतरवर्लित है उनका कथन करे।
- मध्यस्थ को पक्षकारो के बीच संवाद करने के लिए प्रोत्साहन व बढ़ावा देना चाहिये व उसमें आने वाली बाधा, तकरार व झगड़ों को प्रभावी रूप से दूर करना चाहिये।
- मध्यस्थ को जब लगता है कि सभी उपस्थित पक्ष मामले के तथ्यो व दृष्टिकोण को साफ तौर से समझ व पहचान नहीं रहें है तो अतिरिक्त सूचनाओं के प्रकटीकरण के लिए प्रश्न पूछने चाहिये।
- मध्यस्थ को दोनों पक्षो के उनके मामले का सार जो उसने समझा है बताना चाहिये जिससे पक्षकारो को यह दिखाया जा सके कि मध्यस्थ ने दोनो पक्षो का मामला उन्हें सक्रिय रूप से सुनकर समझ लिया है।
- पक्षकार मामले के उन बिंदुओं व पदों पर जो अन्य पक्षकारों द्वारा बनाये है अपनी प्रतिक्रिया दे सकते है। और अनुसने बिंदुओं व पदों को प्राप्त कर अन्य पक्षकारों से संक्षिप्त प्रश्न पूछ सकते है।
- मध्यस्थ को पक्षकारो के मध्य सहमति व असहमति के क्षेत्रों व निराकृत किये जाने हेतु विवादो को चिन्हित किया जाना चाहिए।
- मध्यस्थ को मध्यस्थता की कार्यवाहियों को इस प्रकार नियंत्रित व सुनिश्चित करना चाहिये जिससे पक्षकार कार्यवाहियों पर बाधा डालकर या आक्रमक होकर या इस प्रकार के अन्य असामान्य व्यवहार से आकरण हावी न हो पायें।
- संयुक्त सत्र की समाप्ति पर या उसके दौरान मध्यस्थ को प्रायः वादी/याचिकाकर्ता से सत्र प्रारम्भ करते हुये प्रत्येक पक्ष से पृथक रूप से उसके अधिवक्ता के साथ बैठक करनी चाहिए, संयुक्त सत्र की अवधि मध्यस्थ अपने विवेक से तय कर सकता

है, जो संयुक्त सत्र की उत्पादकता, पक्षकारों की चुप्पी, नियंत्रण की कमी पक्षकारों के द्वारा अपनी बात को बार–बार दुहराने या अन्य प्रकार से अनुरोध करने पर निर्भर हो सकता है। बहुत से पृथक सत्र हो सकते है। मध्यस्थ मध्यस्थता की प्रक्रिया में संयुक्त सत्र के किसी भी स्तर से वापस हो सकता है, यदि उसे ऐसा करने की आवश्यकता महसूस होती है।

चरण–3 पृथक सत्र

उददेश्य

- विवाद को गहराई से समझें।
- पक्षकारों को अपनी भावनाओं को और खुलेपन से प्रकट करने के लिये मंच प्रदान करना।
- पक्षकारों को उनकी गोपनीय जानकारी का जिसे वह अन्य पक्षकार के साथ खुलासा नहीं करना चाहते हैं, मंच प्रदान करना।
- पक्षकारों के अंतनिर्हित हितो को समझना।
- पक्षकारों को उनके मामलें को वास्तविक रूप से समझने में मदद करना।
- पक्षकारों को समाधान खोजने वाली मनस्थिति में ले जाना।
- पक्षकारों को विकल्पों को उत्पन्न करने व पारस्परिक स्वीकार योग्य शर्तो को खोजने के लिये प्रोत्साहित करना।

प्रकिया

1. दृढ़ता पूर्वक गोपनीयता कायम रखना

प्रत्येक पृथक सत्र के दौरान प्रत्येक पक्षकार एवं उसके विधिक सलाहकारगोपनीयता कायम रखते हुए मध्यस्थ से वार्ता करेगें।मध्यस्थ मध्यस्थता की प्रक्रिया की गोपनीय प्रकृति की पुनः पुष्टि करते हुये कार्यवाही प्रारम्भ करेगा।

2. अन्य सूचनाओं को इकट्ठा करना

पृथक सत्र मध्यस्थ को अति विशिश्ट जानकारी इकट्ठा करने के लिये अवसर प्रदान करता है और जिससे उन मुद्दों को हल किया जा सके जो पक्षकार के मध्य प्रकिया के इस स्तर पर संयुक्त सत्र के दौरान उठाये गये है।

- पक्षकार अपनी व्यक्तिगत भावनाओं, दर्द, उपहति व क्रोध आदि को व्यक्त करते है।
- मध्यस्थ भावनात्मक पहलुओं को पहचान कर उन्हें, अभिस्वीकृत करता है।
- मध्यस्थ संवेदनशील व शमिन्दगी वाले मुद्दों की खोज करता है।

- मध्यस्थ पक्षकारों द्वारा जो स्थिति अखत्यार की जा रही है, व उनके द्वारा जिन हितो की रक्षा की जा रही है उनके बीच अंतर करता है।
- मध्यस्थ पक्षकारों के द्वारा ली गयी स्थिति की पहचान (आवश्यकता, पक्षकार किस लक्ष्य को प्राप्त करने की आशा करते है) के आलोक में करता है।
- मध्यस्थ पक्षकारों के मध्य विवाद का क्षेत्र और पूर्व में जिन वाद पर वे राजी हो चुके है उनकी पहचान करता है।
- समान हितो की पहचान करता है।
- मध्यस्थ विवाद के अलग–अलग पहलुओं पर प्रत्येक पक्षकार की प्राथमिकता की पहचान करता है जिससे किसी भी संतुलन की संभावना का पता लगाया जा सके।
- मध्यस्थ संकल्प के मुद्दों को तैयार करता है।

3. वास्तविकता का परीक्षण

मध्यस्थ जानकारियों को इकट्ठा करने व पक्षकारों को उनकी भावनाओं को व्यक्त करने की अनुमति देने के बाद इस बात का निर्णय करता है कि क्या इस बात की आवश्यकता है कि पक्षकारों के निश्कर्श व धारणाओं का परीक्षण किया जावे या चुनौती दी जावे या वे अपने मन की बात खुलकर विभिन्न दृष्टिकोणों पर रखें तब मध्यस्थ कार्यवाही को आगे बढ़ायेगा। वास्तविकता के परीक्षण को अपनायेगा। वास्तविकता परीक्षण में निम्न बातें,ये सभी या उनमें से कोई एक सम्मिलित होगी–

(क) किसी दावे/बचाव या दृष्टिकोण के विशिष्ट अवयवों का परीक्षण।

(ख) दावे/बचाव या दृष्टिकोण मुद्दों की साक्ष्य के तथ्यात्मक व विधिक आधारों की पहचान।

(ग) विवाद के सम्भावित परिणाम के संबंध में पक्षकारों की स्थिति अपेक्षायें व उनके निर्धारण पर विचार।

(घ) मुकदमेंवाजी व निरंतर विवाद की मौद्रिक व गैर मौद्रिक लागतों की परीक्षा।

(ड) पक्षकारों की विश्वसनीयता व साक्षीगण की उपस्थिति का आकलन।

(च) विचारण में जीत व हार का परीक्षण।

(छ) किसी समझौते तक पहुँचने में असफलता का परिणाम।

वास्तविकता के परीक्षण की तकनीक

वास्तविकता का परीक्षण अक्सर पृथक सत्र में निम्नानुसार द्वारा किया जाता हैः–

1. प्रभावी प्रश्न पूछने के द्वारा।
2. पक्षकारों के मामलों की ताकत व कमजोरी के बारे में गोपनीयता का उल्लंघन किये बिना चर्चा करके।
3. समझौते पर पहुॅचने में विफलता के परिणामों पर विचार करके (सुलह वार्ता का सबसे अच्छा विकल्प, सुलह वार्ता का सबसे खराव विकल्प, सुलह वार्ता का सबसे ज्यादा संभावित विकल्प का विश्लेशण करके)

1. प्रभावी प्रश्न पूछना

मध्यस्थ पक्षकारों से जानकारी प्राप्त करने व तथ्यों को स्पष्ट या दृष्टिकोण में परिवर्तन करने, जो कि मामलें में उनकी समझ व अपेक्षाओं से संबंधित है, के उददेश्य से प्रश्न पूछ सकता है।

प्रभावी प्रश्नों के उदाहरण :

- **ओपन एंड प्रश्नः**–जैसे उन परिस्थितियों के बारें में बताये जिन पर चल कर अनुबंद हस्ताक्षरित कर सकते है। जब आपके द्वारा अन्य पक्षकार के साथ व्यापारिक अनुबंध किया गया। उस समय आपके संबंध उसके साथ कैसे थे? इस बात को समझने में मेरी मदद करें? उक्त शर्त को अनुबंध में शामिल करने का क्या कारण था?
- **बंद प्रश्नः**– जो विशिश्ट होते है। व ठोस होते है। और जो विशिष्ट जानकारी प्राप्त कराते है। उदाहरण के लिये, मैं समझता हूं कि दुर्घटना के समय बालक 60 किलोमीटर प्रति घंटे की गति से जा रहा था? किस दिनांक को करार में हस्ताक्षर हुये थे? वह ठेकेदार कौन है, जिसने यह इमारत बनाई है?
- **प्रश्न जिन से तथ्यों का पता चलता हैः**–मुझे इस मामलें की पृष्ठभूमि के बारें में बताये? आगे क्या हुआ?
- **प्रश्न जिनसे स्थितियों के बारें में पता चलता हैः**– आपका विधिक दावा क्या है? नुकसान क्या हुआ है? उनका बचाव क्या है?
- **प्रश्न जिनसे हितों के बारें में पता चलता हैः**– इन परिस्थितियों में आपके क्या विचार है, आपका वास्तव में क्या मामला है? आपके लिये एक व्यवसाय/व्यक्तिगतहित/परिवारिक दृष्टिकोण में से कौन सा महत्वपूर्ण है? आप तलाक क्यों चाहते है? यह मामला वास्तव में क्या है? आप क्या हासिल करने की उम्मीद करते है? इस मामलें को वास्तव में क्या चीज चला रही है?

2. पक्षकारों से संबंधित मामले की मजबूती व कमजोरी पर चर्चाः–

मध्यस्थ को पक्षकारो से या उनके सलाहकारो से उनके मामले की व अन्य पक्ष के मामले की मजबूती व कमजोरी के बारें में उनके विचार जानने के लिये पूछा जाना चाहिये। मध्यस्थ इस प्रकार के प्रश्न पूछ सकता है। आपके इस संबंध में क्या विचार है कि आपका आचरण एक न्यायाधीश द्वारा किस तरह से देखा जायेगा या यह सम्भव है कि न्यायाधीश परिस्थितियों को अलग ढंग से देखे या मैं आपके मामले की मजबूती (गुणों) को समझता हूं। आपके मामलें में साक्ष्य के लिहाज से कौन से कमजोर बिन्दू है और इस पर आपके क्या विचार है? या यह मामला अंतिम निर्णय होने में कितना समय लेगा? या न्यायालय में कानूनी फीस या खर्च में कितना पैसा लगेगा?

3. समझौते पर पहुॅचने से पहले होने वाली असफलता के परिणाम पर विचार करनाः–

BATNA –सुलह–अनुबंध का सबसे अच्छा विकल्प
WATNA–सुलह–अनुबंध का सबसे खराव विकल्प
MLATNA–सुलह–अनुबंध का सबसे ज्यादा संभावित विकल्प

सुलह–अनुबंध के विभिन्न विकल्पों पर विचार करना भी समझौता वार्ता की प्रक्रिया में वास्तविकता परीक्षण की एक तकनीक है। यदि विवाद, मध्यस्थता के अंतर्गत वार्ता से नहीं सुलझता है तब मध्यस्थता के संदर्भ में ऐसे विकल्प ''सर्वोत्तम'', ''सबसे खराब'' और ''सर्वाधिक सम्भावित'' के रूप में होते हैं। वास्तविकता परीक्षण के रूप में पक्षकारों के लिए मध्यस्थता से भिन्न अन्य विकल्पों (विशेष रूप से मुकदमेंबाजी) को परखना सहायक हो सकता है ताकि उन विकल्पों की मध्यस्थता के विकल्प से तुलना की जा सके। समझौते तक पहुंचने में विफल होने के परिणाम जैसे पक्षकारों के संबंधों व व्यवसाय पर दुष्प्रभाव आदि पर चर्चा करना भी मध्यस्थ व्यक्ति के लिए उपयोगी है।

जबकि पक्षकार अक्सर मुकदमेंबाजी के सर्वश्रेष्ठ परिणामों पर ध्यान केंद्रित करना चाहते हैं, तब ऐसी स्थिति में उसके सबसे खराब और सर्वाधिक सम्भावित परिणामों पर विचार करना एवं चर्चा करना भी महत्वपूर्ण है। जब एक मध्यस्थ अधिवक्ता/पक्षकार से मुकदमेंबाजी के सम्भावित परिणाम के बारे में उनके दृष्टिकोण ज्ञात करता है तब मध्यस्थ के लिए यह फलदायक रहेगा कि वह अधिवक्ता व पक्षकारों से उस मुकदमेंबाजी के ''सर्वोत्तम'' तथा ''सबसे खराब'' तथा ''सर्वाधिक सम्भावित'' परिणामों के संबंध में उनकी

समझ विकसित करने पर कार्य करें, जिससे पक्षकारों को वास्तविकता को पहचानने एवं ऐसे प्रस्ताव को तैयार करने में मदद मिलेगी जो यथार्थवादी और व्यवहारिक हो।

परंतु यदि पक्षकारगण सहजता के साथ सर्वसम्मत व हित आधारित अनुबंध पर पहुंच रहे हैं तब उक्त ''सर्वोत्तम''/''सबसे खराब''/''सर्वाधिक सम्भावित'' विकल्प संबंधी विश्लेषण का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। हालांकि यदि पक्षकार समझौता वार्ता में कठिनाई महसूस कर रहे है या मध्यस्थ, कठोर मोलभाव/अडिगता की स्थिति पाता है तब उक्त ''सर्वोत्तम''/''सबसे खराब''/''सर्वाधिक सम्भावित'' विकल्प संबंधी विश्लेषण प्रस्तुत किया जा सकता है।

उपरोक्त तकनीकों का उपयोग करके मध्यस्थ पक्षकारों को उनके मामलें की वास्तविकता को समझने, अपनी कठोरता/अडिगता को छोडने, वास्तविक हित और आवश्यकता को पहचानने और समस्या के समाधान की ओर ध्यान केंद्रित करने में सहायता करता है जिससे पक्षकारगण समझौते के कई रचनात्मक विकल्पों को तलाशने के लिए प्रोत्साहित होते हैं।

4 विचार–मंथन

विचारों का मंथन एक ऐसी तकनीक है जिसका उपयोग समझौते हेतु विकल्प तैयार करने के लिए किया जाता है जिसके दो चरण है –

1. विकल्प बनाना।
2. विकल्पों का मूल्यांकन।

1. **विकल्प बनाना**– इसके अंतर्गत पक्षकारों को स्वतंत्र रूप से समझौते के लिए संभावित विकल्प बनाने हेतु प्रोत्साहित किया जाता है जिन विकल्पों में असाध्य और अव्यवहारिक प्रतीत होने वाले विकल्प भी सम्मिलित होते हैं। फिर मध्यस्थ उन विकल्पों में से किसी एक विकल्प पर निर्णय लेता है और यह पक्षकारों को एक निश्चित मनः स्थिति से मुक्त होना अनुज्ञात करता है। ऐसा करना पक्षकारों में रचनात्मकता को प्रोत्साहित करता है। वही मध्यस्थ, उन विकल्पों के मूल्यांकन करने से स्वयं को रोकता है अपितु इसके बजाय समझौते के कई सम्भावित उपायों/ विचारों को विकसित करने का प्रयास करता है। सभी उपायों/ विचारों को लेखबद्ध किया जाता है ताकि बाद में उन्हें व्यवस्थित रूप से परीक्षित किया जा सके।
2. **विकल्पों का मूल्यांकन**– विकल्पों को तलाशने के उपरांत अगला चरण उन उत्पन्न विकल्पों में से प्रत्येक का मूल्यांकन करना होता है। इस चरण का उद्देश्य किसी भी विकल्प /विचार की आलोचना करना नहीं होता अपितु यह ज्ञात करना

होता है कि पक्षकारों को प्रत्येक विकल्प के बारे में क्या स्वीकारणीय है और क्या अस्वीकारणीय है। पक्षकारों के साथ प्रत्येक विकल्प का परीक्षण करने की इस प्रक्रिया से पक्षकारों के अंतर्निहित हितों के बारे में और अधिक जानकारी प्राप्त की जाती है। इस जानकारी से उन शर्तों को ज्ञात करने में सहायता मिलती है, जो दोनों पक्षों को पारस्परिक रूप से स्वीकार्य है।

विचारों के मंथन में रेखीय सोच के स्थान पर पार्श्व सोच की आवश्यकता होती है।

पार्श्व सोच : पार्श्व सोच रचनात्मक, अभिनव और सहज ज्ञान युक्त होती है। यह गैर रेखीय तथा गैर पारंपरिक होती है। मध्यस्थ, समझौते के विकल्प बनाने के लिए पार्श्व सोच का उपयोग करते हैं।

रेखीय सोच : यह सोच तार्किक, पारंपरिक, तर्कसंगत और तथ्य आधारित होती है। मध्यस्थ तथ्यों का विश्लेषण करने, वास्तविकता परीक्षण करने और पक्षकारों की स्थिति को समझने आदि के लिए रेखीय सोच का उपयोग करते है।

5. उप सत्र

सामान्यतः पृथक सत्र विवाद के एक पक्ष के सभी सदस्यों के साथ आयोजित किया जाता है जिसमें उनके अधिवक्तागण और पक्षकार के साथ आये अन्य सदस्यगण सम्मिलित होते है। हालांकि मध्यस्थ के लिए यह विकल्प खुला है कि उप सत्र के माध्यम से वह उन लोगों से व्यक्तिगत रूप से मिले या सामूहिक रूप से मिले या केवल अधिवक्ता से अथवा केवल एक पक्ष से मिले।

अ. मध्यस्थ दोनों पक्षकारों के अधिवक्ताओं मात्र के साथ पक्षकारों की सहमति से उप सत्र आयोजित कर सकता है। ऐसे उप सत्र के दौरान उक्त अधिवक्तागण उनके पक्षकारों की स्थिति व अपेक्षाओं के बारे में अधिक खुले और निःसंकोची हो सकते हैं।

ब. यदि एक तरफ के पक्षकारों के बीच परस्पर हितों का टकराव हो तो समझौता वार्ता को सुविधाजनक करने हेतु समान हित रखने वाले पक्षकारों के साथ एक उप सत्र आयोजित करना लाभकारी हो सकता है। इस प्रकार के उप सत्र हितों की पहचान करने को सुविधाजनक बनाते हैं और अलग–अलग हितों वाले पक्षकारों का, समझौते को बाधित करने के लिए, समूह निर्माण की सम्भावना को भी रोकता है।

6. प्रस्तावों का आदान–प्रदान

मध्यस्थ पक्षकारों द्वारा बनाये गये प्रस्तावों को एक पक्ष से दूसरे पक्ष तक पहुंचाता है। पक्षकारगण परस्पर स्वीकार्य समझौता बिंदु पर मध्यस्थ के माध्यम से ही बातचीत करते हैं। हालांकि यदि वार्ता विफल हो जाती है और समाधान नहीं हो पाता है तो मामला वापस रैफरल (निर्दिष्टकर्ता) न्यायालय को लौटा दिया जाता है।

चरण 4: समापन

(अ)समझौता होने की दशा में–

- एक बार जब पक्षकारगण समझौता अनुबंध की शर्तों पर सहमत हो जाते हैं तब सभी पक्षकारगण और उनके अधिवक्तागण पुनः एकत्र होते हैं और तब मध्यस्थ यह सुनिश्चित करता है कि निम्नलिखित कदम उठाये गये हैं :–

1. मध्यस्थ, शर्तों की पुष्टि मौखिक रूप से करता है ;
2. ऐसी अनुबंध शर्ते लेखबद्ध की गई हो;
3. समझौता अनुबंध, सभी पक्षकारों द्वारा एवं उनका प्रतिनिधित्व करने वाले अधिवक्तागण द्वारा हस्ताक्षरित हो;
4. मध्यस्थ के प्रमाणीकरण हस्ताक्षर कि उसके समक्ष अनुबंध हस्ताक्षरित हुआ है, भी अनुबंध पर अंकित हो;
5. हस्ताक्षरित अनुबंध की एक–एक प्रति पक्षकारगण को दी जाए;
6. हस्ताक्षरित अनुबंध का मूल, रैफरल (निर्दिष्टकर्ता) न्यायालय को समझौता अनुबंध अनुसार समुचित आदेश पारित करने के लिए भेजा जाए;
7. जहां तक व्यवहारिक हो, न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने की पक्षकारों द्वारा परस्पर सहमत दिनांक को रैफरल (निर्दिष्टकर्ता) न्यायालय को सूचित किया जाये;
8. मध्यस्थ, पक्षकारों को उनकी मध्यस्थता कार्यवाही में भागीदारी के लिए धन्यवाद देता है और सभी पक्षों को समझौते पर पहुंचने के लिए बधाई देता है;

- **एक समझौता अनुबंध में निम्नलिखित अंतर्निहित होना चाहिए** –

- समस्त तात्विक सहमत शर्तें स्पष्ट तौर पर निर्दिष्ट हो;
- सरल, सटीक और असंदिग्ध भाषा में प्रारूपित हो;
- संक्षिप्त व सारगर्भित हो;

- जहां तक हो सके कर्ता द्वारा कार्य का स्पष्ट उल्लेख हो जैसे कौन करेगा, क्या करेगा, कब करेगा, कहां करेगा और कैसे करेगा आदि; (कर्मवाच्य वाक्यों से स्पष्ट नहीं होता है कि निष्पादन का दायित्व किस पक्षकार पर रहेगा);
- ऐसी भाषा और अभिव्यक्ति का उपयोग किया जाना चाहिए जो यह सुनिश्चित करे कि कोई भी पक्ष अपने को हारा हुआ अथवा कुछ खोया हुआ महसूस न करे;
- समझौता अनुबंध की शर्तें विधि अनुसार प्रवर्तनीय हो;
- अनुबंध की शर्तों का संपूर्ण प्राक्कथन हो;
- अनुबंध में पक्षकारों द्वारा प्रयुक्त आम बोलचाल के शब्दों और अभिव्यक्ति का ही प्रयोग किया जाना चाहिए और विधि की कठिन शब्दावलीयों के प्रयोग से बचना चाहिए;
- जहां तक हो सके अनुबंध में सकारात्मक भाषा कि, प्रत्येक पक्षकार क्या करने को सहमत हुए हैं, का उपयोग किया जाना चाहिए;
- जहां तक हो सके अस्पष्ट शब्द जैसे जल्द ही, उचित हो, मिलकर करने अथवा प्रायः/अक्सर आदि के उपयोग से बचना चाहिए;

(ब)<u>समझौता नहीं होने की दशा में</u>–

- यदि पक्षकारों के मध्य समझौता नहीं हो सका तो प्रकरण रैफरल (निर्दिष्टकर्ता) न्यायालय को मात्र ''असफल'' के प्रतिवेदन के साथ वापस लौटा दिया जायेगा। ऐसे प्रतिवेदन में समझौता नहीं होने के कोई कारण या किसी पक्ष को उत्तरदायी ठहराने जैसे बिंदु समाहित नहीं होंगे। मध्यस्थता कार्यवाही के दौरान दिए गए कथन, गोपनीय रहेंगे और किसी भी पक्ष या अधिवक्ता या मध्यस्थ द्वारा न्यायालय को या किसी अन्य को प्रकट नहीं किए जाने चाहिए;
- मध्यस्थ द्वारा अपने समापन सम्बोधन में, पक्षकारों व उनके अधिवक्ता को उनकी मध्यस्थता कार्यवाही में भागीदारी तथा समझौते के प्रयास के लिए धन्यवाद देना चाहिए;

अध्याय – 7

मध्यस्थों की भूमिका

मध्यस्थता एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें एक निष्पक्ष और तटस्थ तीसरा व्यक्ति मध्यस्थ के रूप में समाधान को सुझाये बिना, एक विवाद के निपटारे को सुकर बनाता है। यह एक अनौपचारिक और पारस्परिक प्रक्रिया है जिसका उद्देश्य विवाद के पक्षकारों को आपसी सहमति से स्वीकार्य समाधान तक पहुंचने में सहायता करना है। मध्यस्थ की भूमिका पक्षकारों के मध्य परस्पर संपर्क व बातचीत की बाधाओं को दूर करने, विवाद्यकों की पहचान करने में सहायता करने, विकल्पों की खोज करने तथा विवाद को हल करने के लिए पारस्परिक रूप से स्वीकार्य समझौतों की सुविधा देने आदि में होती है। हालांकि अंतिम निर्णय पक्षकारों के हाथ में होता है। एक मध्यस्थ किसी भी पक्ष को एक विनिर्दिष्ट निर्णय लेने या किसी अन्य तरीके से प्रभावित करना या पक्षकार के स्व निर्णय के अधिकार में हस्तक्षेप करने के लिए दबाव नहीं बना सकता है।

(अ) मध्यस्थ के कार्य :–

मध्यस्थ के कार्य निम्नलिखित है –

(i) मध्यस्थता की प्रक्रिया को सुविधाजनक बनाना।

(ii) पक्षकारों को समझौते तक पहुंचने के लिए प्रकरण के मूल्यांकन में सहायता करना।

1) सुगमकारी भूमिका

एक मध्यस्थ निम्नानुसार मध्यस्थता की प्रक्रिया को सुगम बनाता है :–

- मध्यस्थता प्रक्रिया के लिए अनुकूल वातावरण बनाकर;
- प्रक्रिया और उसके आधारभूत नियमों को समझाकर;
- पक्षकारों के मध्य परस्पर संपर्क व वार्ता को विभिन्न संचार तकनीकों के माध्यम से सुगम बनाकर;
- पक्षकारों के मध्य परस्पर संपर्क व वार्ता की बाधाओं को पहचानना और उन्हें दूर करके;
- विवाद के संबंध में जानकारी जुटाकर;

- अंतर्निहित हितों की पहचान करके;
- प्रक्रिया पर नियंत्रण बनाये रख वार्ता/चर्चा को केंद्रित रखने हेतु मार्गदर्शन करके;
- पक्षकारों के मध्य वार्ता का प्रबंधन करके;
- पक्षकारों को विकल्प उत्पन्न करने में सहायता करके;
- आपसी स्वीकार्य समझौता बिंदुओं पर पक्षकारों को सहमत होने के लिए प्रेरित करके;
- पक्षकारों को समझौता अनुबंध लेखबद्ध करने में सहायता करके;

2) **मूल्यांकन की भूमिका –**

एक मध्यस्थकर्ता द्वारा मूल्याकंन की भूमिका निम्न प्रकार से निभायी जाती है।

- पक्षकारों को उनके प्रकरण के मूल्यांकन में सहयोग व मार्गदर्शन करके
- पक्षकारों को समझौते के विकल्प के मूल्यांकन में सहयोग करना

(B)मध्यस्थकर्ता, सुलहकर्ता तथा अधिनिर्णायक से किस प्रकार अलग ह–

(I) मध्यस्थकर्ता और सुलहकर्ता

मध्यस्थकर्ता की सुविधाजनक व मूल्यांकन भूमिका पूर्व में व्याख्या की जा चुकी है। मध्यस्थकर्ता की मूल्यांकन भूमिका पक्षकारों की मदद व मार्गदर्शन कर उनके प्रकरण का वास्तविक परीक्षण व समझौते के विकल्पों के मूल्यांकन में सहायता करने तक सीमित है, परन्तु मिलाप प्रक्रिया में सुलहकर्ता स्वयं पक्षकारों के प्रकरण का मूल्यांकन कर सकता है व समझौते के विकल्प भी सुझा सकता है।

मध्यस्थकर्ता की यह भूमिका नहीं है कि वह प्रकरण में युक्तियुक्त आधार पर निर्णय दे या पक्षकारों को सुलह संबंधी सुझाव दे।

(II) मध्यस्थकर्ता व अधिनिर्णायक

मध्यस्थकर्ता एक अधिनिर्णायक नहीं है, अधिनिर्णायक जैसे कि न्यायाधीशगण, पंचगण और अधिकरणों के पीठासीन अधिकारी जो अभिवचनों और साक्ष्य के आधार पर फैसला देते हैं। अधिनिर्णायकों को सारवान एवं प्रक्रियात्मक विधि के औपचारिक और सख्त नियमों का पालन करना होता है। अधिनिर्णायक के फैसले पक्षकारों पर अपील एवं पुनरीक्षण के अधीन रहते हुए बंधनकारी होते हैं। न्यायिक निर्णय में निष्कर्ष अधिनिर्णायक द्वारा ही लिया जाता है और उसमें पक्षकारों की कोई भूमिका नहीं होती है।

मध्यस्थता में मध्यस्थकर्ता सिर्फ एक सुविधाकर्ता है और वह किसी प्रकार का सुझाव या निर्णय नहीं लेता। पक्षकारों के द्वारा ही निर्णय लिया जाता है। मध्यस्थता में किया गया समझौता अनुबंध पक्षकारों पर बंधनकारी है। न्यायालय द्वारा निर्दिष्ट मध्यस्थता में समझौते अनुबंध के आधार पर पारित डिक्री के विरूद्ध कोई अपील या पुनरीक्षण नहीं हो सकता है। निजी मध्यस्थता में पक्षकार ऐसे समझौते अनुबंध को फिर सुलह समझौते के रूप में मान सकते हैं, जो कि मध्यस्थता और सुलह अधिनियम 1996 के उपबंधानुसार शाशित होगा।

(C) मध्यस्थकर्ता की विशेषताएं

मध्यस्थकर्ता में कतिपय मूलभूत विशेषताएं होना जरूरी है जिसमें शामिल है–

(I) पूर्ण वास्तविक व बिना भार्त की मध्यस्थता प्रक्रिया में वि वास व उसकी प्रभावकारिता।

(II) मध्यस्थता कला की योग्यता तथा प्रतिबद्धता के साथ–साथ अनवरत कौशल व ज्ञान को अद्यतन करना।

(III) संवेदनशीलता, जागरूकता और योग्यता से मध्यस्थता के पक्षकारों की जरूरत, उनके हितों, अकांक्षाओं, भावनाओं, भावों, मानसिकता व मन की स्थिति को समझना, सराहना व उनका आदर करना।

(IV) सर्वोच्च मानक की ईमानदारी व अखण्डता आचरण व व्यवहार में होना।

(V) तटस्थता, निष्पक्षता व गैर आलोचनात्मक।

(vI) सचेत, सक्रीय व सहनशील श्रोता की योग्यता।

(VII)शान्त, सुखद व खुशदिल स्वभाव।

(VIII) धीरज, दृढ़ता व अटलता।

(IX) अच्छा संपर्क कौशल।

(X) खुला दिमाग और लचीलापन

(XI) सहानुभूति

(XII) रचनात्मकता।

(D)मध्यस्थकर्ता की योग्यताएं

भारतीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा न्यायदृष्टांत सलेम एडवोकेट, बार एसोसिएशन वि. भारत संघ, (2005) 6 एससीसी 344 में तात्कालीन विधि आयोग के अध्यक्ष माननीय न्यायमूर्ति एम.जे. राव की अध्यक्षता वाली समिति द्वारा तैयार आदर्श सिविल प्रक्रिया मध्यस्थता नियमों को अनुमोदित किया गया था। ज्यादातर उच्च न्यायालयों द्वारा इन नियमों को राज्य की आवश्यकतानुसार संशोधित कर लागू कर दिया गया है। आदर्श नियमों अनुसार निम्न व्यक्तियों को मध्यस्थता पेनल हेतु योग्य व उपयुक्त माना गया है–

(अ) (I) भारत के सर्वोच्च न्यायालय के सेवा निवृत्त न्यायाधीश

(II) उच्च न्यायालय के सेवा निवृत्त न्यायाधीश

(III) सेवा निवृत्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश या शहरी व्यवहार न्यायालय के सेवा निवृत्त न्यायाधीश या समकक्ष न्यायालय के न्यायाधीश

(ब) सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालय या जिला न्यायालय या समकक्ष स्तर के न्यायालय के समक्ष कम से कम 15 वर्शों का अनुभव रखने वाले अभिभाशक

(स) विशेषज्ञ या अन्य पेशेवर जिन्हें कम से कम 15 वर्षों का अनुभव हो या सेवा निवृत्त वरिष्ठ नौकर शाह या सेवा निवृत्त वरिष्ठ कार्यपालक अधिकारी

(द) संस्थान जिनमें मध्यस्थता के विशेषज्ञ हो और जो उच्च न्यायालय द्वारा मान्यता प्राप्त हो या उच्च न्यायालय से उसके सदस्यों के नाम अनुमोदित हो या जब भी सदस्यता में बदलाव हो।

(इ) मध्यस्थकर्ता का आचरण व उसकी आचार नीति

(1) हितों के टकराव से बचना

मध्यस्थकर्ता को उन प्रकरणों की मध्यस्थता करने से बचना चाहिए, जिसके निराकरण से उनका प्रत्यक्ष निजी व्यवसायिक या आर्थिक हित जुड़ाहो। यदि मध्यस्थकर्ता का कोई अप्रत्यक्ष हित (जैसे वह किसी ऐसे व्यक्ति के साथ फर्म में काम करता, जिसके परिणाम में उसकी रूचि है या वह किसी से संबंधित है जिसकी ऐसी रूचि है) होने पर ऐसे हित का खुलासा सर्वप्रथम अवसर पर करने के लिए बाध्य है और तब तक मामलें में मध्यस्थता नहीं करेगा, जब तक ऐसे अप्रत्यक्ष हित के बावजूद पक्षकार विशेष रूप से सहमत हो।

जहां मध्यस्थकर्ता एक वकील है, वह किसी भी पक्ष की ओर से विवाद में पैरवी नहीं करेगा, जिस विवाद में वह मध्यस्थता करता है।

मध्यस्थकर्ता को विवाद के किसी भी पक्षकार से विवाद के निराकरण पश्चात् एक युक्तियुक्त समयावधि की समाप्ति के पूर्व किसी भी तरह का व्यवसायिक रिश्ता नहीं रखना चाहिए न ही ऐसी आशा करनी चाहिए।

(2) व्यवसायिक भूमिका की योग्यता और क्षमता के बारे में जागरूकता

मध्यस्थकर्ता का यह दायित्व है कि वह अपनी क्षमता व योग्यता की सीमा पहचाने व ऐसे कामों से परहेज करें, जिसे करने हेतु वह सशक्त नहीं है और पक्षकार को संक्षिप्त में उनके अनुभव व पृष्ठभूमि से अवगत कराये।

मध्यस्थता के पक्षकारों को मध्यस्थकर्ता द्वारा उसकी अन्य व्यवसायिक सेवाएं देने से बचना चाहिए भले ही वह ऐसी सेवाएं देने हेतु योग्य हो, ऐसा करने से वे अपनी प्रभावशीलता बतौर मध्यस्थकर्ता से समझौता कर सकेंगे।

(3) निष्पक्षता की आदत

मध्यस्थकर्ता का यह कर्त्तव्य है कि वे मध्यस्थता के प्रारम्भ से अंत तक निष्पक्ष रहें। उनके शब्दों, ढंग, दृष्टिकोण, शारीरिक भाषा और प्रक्रिया प्रबंधन में निष्पक्षता व समानता का भाव झलकना चाहिए।

(4)स्वेच्छतया सुनिश्चित करना

मध्यस्थकर्ता को मध्यस्थता की स्वेच्छिक प्रकृति का सम्मान करना चाहिए और पक्षकारों के किसी भी स्तर पर पीछे हटने के अधिकार को जानना चाहिए।

(5) गोपनीयता बनाये रखना

मध्यस्थता की प्रकृति गोपनीय होती है। एक मध्यस्थकर्ता को अधिरोपित व विश्वास व गोपनीयता के रिश्ते के प्रतिवफादार रहना चाहिए। मध्यस्थकर्ता किसी मामले का खुलासा नहीं करेगा, जो पक्षकार गोपनीय रखना चाहता है, जब तक कि –

(अ) मध्यस्थकर्ता को विशेष रूप से संबंधित पक्षकार के द्वारा अनुमति दी गई हो।

(ब) विधि अनुसार मध्यस्थकर्ता के लिए ऐसा करना आवश्यक हो।

(6) कोई नुकसान नहीं करना

मध्यस्थकर्ता को ऐसी मध्यस्थता प्रक्रिया से बचना चाहिए, जो कि किसी पक्षकार को हानि पहुंचाये या विवाद को बदतर कर दे। कुछ लोग भावनात्मक रूप से परेशान होते हैं, ऐसी स्थिति में मध्यस्थकर्ता को मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। कुछ लोग मध्यस्थता हेतु उस स्तर पर आते हैं, जब वे इसके लिए तैयार नहीं होते। कुछ लोग स्वेच्छया और मध्यस्थता में भाग लेने हेतु योग्य होते हैं, परन्तु

मध्यस्थकर्ता प्रक्रिया को ऐसे संभालता है, जिससे प्रकरण के निराकरण होने के बजाये दोनों पक्षों को आपस में भड़काता है। ऐसी परिस्थितियों में मध्यस्थकर्ता को प्रक्रिया में बदलाव करना चाहिए (जैसे पक्षकारों से पृथक–पृथक मिलना या उनके अभिभाषक से ही मिलना) और जहां जरूरी हो, मध्यस्थता से पीछे हटना, जहां यदि संशोधन किये जाने के उपरान्त भी मध्यस्थता अनुचित या हानिकारक हो।

(7) आत्मनिर्णय को बढ़ावा देना

मध्यस्थता के पक्षकारों को उनके स्वयं के फैसले लेने हेतु समर्थन व प्रोत्साहन करना (व्यक्तिगत या सामूहिक दोनों रूपों में) जिससे प्रकरण का निराकरण हो, बजाय इसके कि मध्यस्थकर्ता के विचारों को अन्य पर थोपना, यह मध्यस्थता प्रक्रिया का मौलिक आधार है। मध्यस्थकर्ता को यह भी सुनिश्चित करना चाहिए कि किसी पक्षकार या व्यक्ति का दबदबा अन्य पक्षकार या व्यक्ति को उसके स्वयं के फैसले लेने से न रोके।

(8) सहमति की सूचना को सुविधाजनक बनाना

विवादों का निपटारा सहमति की सूचना पर ही आधारित होना चाहिए, हालांकि पक्षकारों के लिए मध्यस्थकर्ता जानकारी का स्त्रोत नहीं हो सकता, परन्तु मध्यस्थकर्ता को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि पक्षकारों को पर्याप्त जानकारी व तथ्यों का ज्ञान हो, जिससे वे समझौते के विकल्प का आकलन कर सके। यदि पक्षकारों को ऐसी सूचना का अभाव है तो मध्यस्थकर्ता कैसे उन्हें उपयुक्त चीजें प्राप्त करने का सुझाव दे सकता है।

(9) तीसरे पक्ष के प्रति कर्त्तव्यों का निर्वहन

जिस तरह मध्यस्थकर्ता को किसी पक्षकार को हानि नहीं पहुंचानी चाहिए उसी प्रकार उसे यह भी विचार करना चाहिए कि प्रस्तावित समझौते से अन्य लोगों को भी कोई नुकसान कारित न हो, जो मध्यस्थता में भाग नहीं ले रहें यह और भी महत्वपूर्ण है कि जब मध्यस्थता समझौते से तीसरा पक्ष जो प्रभावित होता है वह बच्चे या अन्य कमजोर लोग जैसे कि बुजुर्ग या दुर्बल। जब तक कि तीसरा पक्ष पृत्यक्ष रूप से प्रक्रिया में शामिल नहीं है, ऐसे में मध्यस्थकर्ता का यह कर्त्तव्य है कि वह पक्षकारों से संभावित लोगों के बारे में पूछताछ करे और पक्षकारों को उस तीसरे पक्ष के हितों के बारे में सोचने हेतु प्रोत्साहित करें।

(10) ईमानदारी व अखण्डता के प्रति प्रतिबद्धता

एक मीडिएटर के लिए ईमानदारी का अर्थ अन्य चीजों के बीच पूर्ण और निष्पक्ष प्रकटीकरण –

(अ) उसकी योग्यताएं और पूर्व अनुभव।

(ब) प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष हित विवाद के परिणाम में यदि कोई हो।

(स) मध्यस्थता के किसी भी अन्य पहलू, जो पक्षकार की प्रक्रिया में भागीदारी की तत्परता को प्रभावित करे।

(द) मध्यस्थता का कोई अन्य पक्ष जो पक्षकारों को मध्यस्थता प्रक्रिया में भाग लेने से प्रभावित करता है।

ईमानदारी का यह भी अर्थ होता है कि पक्षकारों से जब पृथकतः मिलते समय उन्हें सच्चाई से अवगत कराना। उदाहरण – अगर पक्षकार 'अ' गोपनीय रूप से उसकी न्यूनतम अपेक्षा का खुलासा करता है और बाद में पक्षकार 'ब' मध्यस्थकर्ता से विपक्ष की न्यूनतम अपेक्षा के संबंध में पूछता है तो ऐसी स्थिति में 'नहीं' कहना बेईमानी होगा। इसके बजाय मध्यस्थकर्ता यह कह सकता है कि उसने गोपनीयता के आधार पर पक्षकार 'अ' के साथ कई चीजों पर चर्चा की है और इसलिए वह इस प्रश्न का जवाब देने के लिए स्वतंत्र है। जैसे वह पक्षकार के बारे में बताने से पहले ही बाहर हो जायेगा, पक्षकार 'अ' की कुछ चीजें जो पक्षकार 'ब' द्वारा बताई गई थी। जब पक्षकारों से निजी सत्र की श्रृंखला की मध्यस्थता में पृथकतः व गोपनीय मध्यस्थता होती है, तब मध्यस्थकर्ता एक अलग व विशेषाधिकार स्थिति में होता है, उसे पक्षकारों द्वारा रखे गये विश्वास का दुरूपयोग बिल्कुल भी नहीं करना चाहिए, भले ही उसका यह मानना हो कि सत्य छुपाने से समझौते में आसानी होगी।

नियमों के तहत निर्धारित शुल्क/पारिश्रमिक/मानदेय यदि हो तो के अलावा मध्यस्थकर्ता मध्यस्थता प्रक्रिया के पूर्व या पश्चात् कोई भी राशि या उपहार की न तो इच्छा करेगा न ही प्राप्त करेगा।

जहां मध्यस्थकर्ता एक न्यायिक अधिकारी हो, वहां वह किसी विवाद में मध्यस्थता में शामिल न होगा, न ही जुडेगा जहां ऐसा मामला उसके न्यायालय में विचाराधीन है।

अध्याय – 8
मध्यस्थों का प्रशिक्षण

कोई भी व्यवस्था भले ही पूरी तरह से संरचित क्यों न हो, उसमें कार्य करने वाले व्यक्तियों को परिचालन कौशल के बिना वांछित परिणाम प्राप्त नहीं होते। कोई व्यक्ति जो विशेषतः किसी कार्य को करने के लिए चयनित है उस कार्य के उचित प्रशिक्षण के बिना उससे त्रुटियॉ होना संभाव्य है। किसी व्यक्ति के कार्य पूर्ण करने के पूर्व प्रशिक्षण अपरिहार्य है। प्रशिक्षण किसी व्यक्ति की दक्षता में आने वाली कमियों की पहचान कर उसे दूर करते हुए उसकी कार्य करने की कुशलता को निखारता है। प्रशिक्षण लक्ष्य के अनुरूप केन्द्रित विशेषीकृत परिणामोंन्मुख एवं व्यवस्थित होना चाहिए। इससे प्रशिक्षु की दक्षता, ज्ञान एवं दृष्टिकोण में सुधार होना चाहिए।

भारत में मध्यस्थता एक विकासशील अवधारणा है। मध्यस्थता को पूर्ण रूप से विवादों के निराकरण हेतु उपकरण के रूप में विकसित करने के प्रयास किये जा रहे हैं। मध्यस्थ को मध्यस्थता की मूलभूत बातें सीखने हेतु प्रशिक्षण आवश्यक है। मध्यस्थ की पृष्टभूमि पर विचार किये बिना उसका प्रशिक्षण आवश्यक है चाहे वह न्यायिक अधिकारी हो या, अधिवक्ता हो या किसी अन्य श्रेणी से संबंधित हो।

सम्पूर्ण भारत में समान मध्यस्थता प्रक्रिया एवं कार्यक्रम का होना आवश्यक है। मध्यस्थों के लिए प्रशिक्षण की अवधि, प्रकृति और पाठ्यक्रम के मामलें में भी एकरूपता होनी आवश्यक है।

प्रशिक्षण हेतु अवधि

अंतर्राष्ट्रीय मानकों और घरेलू आवश्यकताओं के प्रकाश में प्रशिक्षण की न्यूनतम अवधि 40 घंटे की होनी चाहिए।

प्रशिक्षण की प्रकृति

प्रशिक्षण में सम्मिलित हैं :–

1. सिद्धांत

2. अभ्यास जैसे रोल प्ले और प्रद र्शन।

3. प्रशिक्षक या प्रशिक्षित मध्यस्थ के मार्गदर्शन में मध्यस्थों को कुछ वास्तविक विवादों की मध्यस्थता का व्यावहारिक प्रशिक्षण।

पाठ्यक्रम

प्रशिक्षण के पाठ्यक्रम में शामिल होंगेः—

1. मध्यस्थता की अवधारणा और प्रक्रिया।
2. भारत में मध्यस्थता का विकास और विधायी इतिहास।
3. समस्या का प्रबंधन और संकल्प।
4. मध्यस्थता की अवधारणा।
5. मध्यस्थता के प्रकार।
6. मध्यस्थता के लाभ।
7. मध्यस्थता और विवाद समाधान के अन्य तरीकों के बीच अंतर।
8. मध्यस्थता के प्रक्रम।
9. बातचीत।
10. संचार
11. गतिरोध प्रबंधन।
12. मध्यस्थ की भूमिका।
13. मध्यस्थ के पालन हेतु नियम और आचार संहिता।
14. रैफरल जजों की भूमिका।
15. पक्षकार और उनके अधिवक्ताओं की भूमिका।
16. करार समझौते की प्रवर्तनीयता।
17. मध्यस्थता नियम।

अध्याय– 9

मध्यस्थता में संचार

1.1 संचार मध्यस्थता का मूल है। अतः मध्यस्थता की सफलता के लिए मध्यस्थता के सभी पक्षकारों के मध्य प्रभावी संचार आवश्यक है।

1.2 संचार सिर्फ बातचीत और सुनना नहीं है। सूचना प्रसारण के लिए संचार एक प्रकिया है।

1.3 संचार का उद्देश्य एक संदेश देना है।

1.4 संचार का उद्देश्य निम्नलिखित में से कोई या सभी हो सकता हैः–

- दूसरों के प्रति हमारी भावनाओं/मत/विचारों/भावनाओं/इच्छाओं को व्यक्त करना।
- दूसरों को यह समझने के लिए कि हम क्या और कैसे महसूस करते हैं/सोचते हैं।
- लाभ या लाभ प्राप्त करने के लिए।
- जरूरतमंद की आवश्यकता या मांग को व्यक्त करना।

1.5 संचार से आशय किसी व्यक्ति को उस रूप में संदेश भेजने से है जिस रूप में आप उसे भेजना चाहते हैं। उदाहरण के लिए किसी चीज के अस्वीकृति का संदेश बोले गए शब्दोंद्वारा या इशारों या चेहरे के भाव या इनमें से सभी माध्यम से किया जा सकता है।

1.6 संचार एक प्रकार की सूचना भी है जो एक व्यक्ति द्वारा दूसरे को भेजी जाती है और जो प्राप्तकर्ता द्वारा उसी प्रकार समझी जावे जिस रूप में सूचना को प्रेशित करने का आशय था।

1.7 संचार एक विचार या अनुभूति या मत या भावना द्वारा शुरू किया जाता है जो शब्दों/इशारों/कार्य/भाव में रूपांतरित हो जाता है। फिर इसे संदेश में बदल दिया जाता है और वह संदेश प्राप्तकर्ता को प्रेषित होता है। संदेश प्राप्तकर्ता दिये गयेकारणों को जानकर संदेश को समझता है और संदेश के लिए विचारों/भावनाओं/विचारों के संबंध में कारण दर्शित कर संदेश प्राप्तकर्ता शब्दों/हावभावों/कृत्यों/भावों के माध्यम से प्रतिक्रिया देकर प्रेषक को संदेश देता है।

1.8 **फलतः संचार मेंशामिल होगाः–**

प्रेषक – संदेश भेजने वाला व्यक्ति।

प्राप्तकर्ता – संदेश प्राप्त करने वाला व्यक्ति।

चनल – माध्यम जिससे किसी संदेश को भेजा जा सकता है जो शब्द या अंग विक्षेप या अभिव्यक्ति हो सकती है।

संदेश – विचार/भावनाओं/विचारों/ज्ञान/सूचनाएं जो कि संचार के लिए मांगी गई।

एन्कोडिग – संदेश/सूचना को सही ढंग से डिकोड कर प्राप्तकर्ता के अनुसार प्रेषित किया जाना।

डिकोडिग – संदेश या जानकारी को समझना।

प्रतिकिया – एक संप्रेषित संदेश का उत्तर/जबाव

इन घटकों में से किसी की भी कमी संचार को अपूर्ण या दोषपूर्ण बना देती है।

1.9 संचार अनाशयित रूप में हो सकता है यथा भावनात्मक स्थिति में भावनाएं शारीरिक भाषा, अंगविक्षेप, शब्दों इत्यादि द्वारा अस्वैच्छिक रूप से प्रेषित होकर महसूस की जा सकती है। एक मध्यस्थ को इस प्रकार के भावों को सतर्कता के साथ ध्यान देना चाहिए।

1.10 संचार मौखिक या गैर–मौखिक हो सकता है। संचार कहे गये शब्दों, लिखित, इशारों,शारीरिक भाषा (बॉडी लैंग्वेज), भावभगिमा के माध्यम से हो सकता है। अध्ययन से पताचलता है कि किसी भी संचार में 55प्रतिशत शारीरिक भाषा, 38 प्रतिशतदृष्टिकोण/आचरण तथा 7 प्रतिशत शब्दों के माध्यम से अर्थप्रेषित होता है।

मौखिक और गैर–मौखिक संचार

मौखिक संचार बोले गए शब्दों के माध्यम से सूचना या संदेश का संचरण है।

गैर–मौखिक संचार प्रेषक द्वारा बोले गये शब्दों के उपयोग के बिना प्रेषिती को सूचना या संदेश प्रसारण को संदर्भित करता है। इसमें लिखित संचार, शारीरिक भाषा (बॉडी लैंग्वेज), स्वर, व्यवहार, रवैया और गैर–मौखिक अभिव्यक्ति के अन्य तरीके शामिल होते हैं। यह मौखिक संचार से अधिक सहज होता है। यह मौखिक संचार की तुलना में सटीक जानकारी प्रदाय करता है।

एक मध्यस्थ के लिए महत्वपूर्ण है कि वह पूरी मध्यस्थता में गैर–मौखिक संचार पर पर्याप्त ध्यान दें। गैर–मौखिक संचार के माध्यम से पार्टियों द्वारा भेजे गये संदेशों का विश्लेषण करना मध्यस्थ के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

1.11 प्रभावी संचार के लिए आवश्यकताएँ:–

(i) सरल और स्पष्ट भाषा का उपयोग करें।

(ii) कठिन शब्दों और वाक्यांशों से बचे।

(iii) अनावश्यक पुनरावृत्ति से बचें।

(iv) सटीक और तार्किक बनें।

(v) विचार और अभिव्यक्ति की स्पष्टता रखें।

(vi) सहानुभूति, गर्मजोशी और रूचि के साथ प्रतिक्रिया दें।

(vii) उचित नेत्र संपर्क (आई कॉन्टेक्ट) सुनिश्चित करें।

(viii) धैर्यवान एवं सक्रिय तथा विनम्र बनें।

(ix) अनावश्यक रूकावटों से बचें।

(x) अच्छी सुनने की क्षमता और कौशल हो।

(xi) ऐसे कथन और टिप्पणियॉ या प्रतिक्रियाएँ करने से बचें जो नकारात्मक प्रभाव डाल सकती हैं।

1.12 अप्रभावी संचार के कारण:–

(i) अवधारणा में अंतर अर्थात् जहां प्रेषक के संदेश को सही तरीके से प्राप्तकर्ता द्वारा नहीं समझा जाता है।

(ii) प्राप्तकर्ता द्वारा संदेश की गलत व्याख्या और विरूपण।

(iii) भाषा और अभिव्यक्ति में अंतर।

(iv) खराब सुनने की क्षमता और कौशल।

(v) धैर्य की कमी।

(vi) किसी तीसरे पक्ष/मध्यवर्ती द्वारा मूल्यवान जानकारी को रोकना या विकृत करना जहां संदेश प्रेषक द्वारा ऐसे तीसरे पक्ष/मध्यवर्ती के माध्यम से प्रेषित किया जाता है।

1.13 संचार की बाधाएं–

भौतिक बाधाएं

(i)सहज वातावरण का अभाव।

(ii) बैठने की उचित व्यवस्था का अभाव।

(iii) तीसरे पक्ष की उपस्थिति।

(iv) पर्याप्त समय का अभाव।

भावनात्मक बाधाएँ

(i) पार्टियों के स्वभाव और उनके भावनात्मक पहलू।

(ii) हीनता, श्रेष्ठता, अपराध या अहंकार की भावनाएँ

(iii) भय, संदेह, अहंकार, अविश्वास या पूर्वाग्रह।

(iv) छिपा हुआ एजेण्डा।

(v) व्यक्तियों का टकराव।

1.14 विरोधात्मक परिस्थितियों में संवाद और मध्यस्थता

	विरोधात्मक तंत्र	**मध्यस्थता**
लक्ष्य	प्राप्त करना	पारस्परिक रूप से स्वीकार्य समाधान तक पहुंचने के लिए
प्रणाली	तर्क पूर्ण	सहयोग पूर्ण
बोलना	बात रखना और सहमत करना	समझाने के लिए
सुनना	कमियों की तलाश करने और प्रतितर्क को विकसित करने के लिए	समझने के लिए

मध्यस्थता में सम्पर्क या संवाद कौशल

मध्यस्थता कार्यवाही के लिए संवाद कौशल में शामिल हैः–

(क) क्रियाशील होकर सुनना।

(ख) सहानुभूति व संवेदना के साथ सुनना।

(ग) शारीरिक हाव–भाव।

(घ) सही प्रश्न पूछना।

(A) सकिय या कियाशील होकर सुनना :–

मध्यस्थता कार्यवाही में पक्षकार आशा, आशंका, संकट, कोध, भ्रम, भय आदि की मनोस्थिति में रहकर भाग लेते है। पक्षकार यदि समझते है कि उनकी बात सुनी और समझी जाएगी, तो यह विश्वास स्थापित करने में मदद करेगा और वे विवाद को सुलझाने में जानकारी साझा कर सकते है।

सक्रिय होकर सुनने की प्रक्रिया में श्रोता, वक्ता के शब्दों, शारीरिक हाव–भाव और संवाद के संदर्भ पर ध्यान देता है।

एक सक्रिय श्रोता दोनो बातों को सुनिश्चित करने के लिए सुनता है कि क्या कहा गया है और क्या नहीं।

वक्ता के गलत बयान या अन्य मर्यादा होने के बावजूद, एक सक्रिय श्रोता, वक्ता के इच्छित संदेश को समझने की कोशिश करता है।

एक सक्रिय श्रोता अपनी आंतरिक आवाजों और निर्णयों को नियंत्रित करता है जो वक्ता के संदेश को समझने में हस्तक्षेप कर सकता है।

सक्रिय होकर सुनने के लिए, वक्ता को बाधित किये बिना सुनने की जरूरत होती है। पक्षकारों को अपनी बात रखने के लिए निर्बाध समय दिया जाना चाहिए। सुनने और सुनाने में अंतर होता है। सुनवाई करते समय, श्रोता को यह पता चल जाता है कि क्या कहा गया है, वह सुनते समय, जो कहा गया है उसका अर्थ समझता है। सुनना एक सक्रिय प्रक्रिया है।

मध्यस्थ द्वारा सक्रिय श्रवण की आमतौर पर उपयोग की जाने वाली तकनीकें अग्रलिखित हैं :–

1. **संक्षिप्तिकरण** :– यह एक संवाद तकनीक है, जहां मध्यस्थ एक वक्ता द्वारा कहे गए मुख्य बिंदुओं की रूपरेखा तैयार करता है। सारांश सटीक, पूर्ण और उसमें शब्द तटस्थता होना चाहिए। उसमें वक्ता द्वारा कहे गए सभी आवश्यक बिन्दुओं का समावेश होना चाहिए। सारांश पक्षकारों के समझने योग्य हो तथा शब्दों की अनाव यक पुनरावृत्ति नहीं होनी चाहिए।

2. **प्रतिबिम्बन या परार्वतन** :– यह एक संवाद तकनीक है जिसका उपयोग मध्यस्थ द्वारा एक वक्ता की भावनाओं व अभिव्यक्तियों को सुनने और समझने के लिए किया जाता है। वक्ता की भावनाओं का श्रोता के अनुभवजन शब्दों में पुर्नकथन ही

प्रतिबिम्बन करना है। उदाहरण स्वरूप– ''तो, आप निराश महसूस कर रहे हैं।'' प्रतिबिम्बन आमतौर पर सहानुभूति प्रदर्शित करता है।

-3 पुनर्रचनाः–पुनर्रचना एक संवाद तकनीक है, जिसका इस्तेमाल मध्यस्थों द्वारा पक्षकारों को उनके द्वारा लिए गए स्थिति या अवस्था से हटने और उसके बाद संभावित समाधानों तक ले जाने में मदद करने के लिए किया जाता है।इसमें वक्ता के आरोपित और आपत्तिजनक शब्दों को हटाना शामिल है।पुर्नरचना इन पाँच आवश्यक कार्य पूरा करता है :–

-1 कथन को नकारात्मक से सकारात्मक में परिवर्तित करता है।

-2 वक्तव्य को भूतकाल से भविष्य में ले जाता है।

-3 हितों की स्थिति बावत वक्तव्य में परिवर्तन करता है।

-4 लक्षित व्यक्ति से ध्यान हटाकर वक्ता पर केंद्रित करना।

-5 भावनाओं की तीव्रता को कम करता है।

उदाहरण–

पक्षकार–मेरा मालिक क्रूर और उदासीन हैं। उनसे बात करना असंभव है। मुझे दिनमें कम से कम एक बार उनसे मिलने में सक्षम होना चाहिए। वे मेरे लिएकोई समय नहीं निकालते और हमेशा मेरी उपेक्षा करते हैं।

मध्यस्थद्वारा पुनर्रचित :–आप अपने मालिक के साथ नियमित सम्पर्क और संवाद चाहते हैं और आपचाहते हैं कि वे विचारशील हो, क्या यह सही है ?

यहपुनर्रचना कर्मचारी की शिकायत को नकारात्मक से सकारात्मक, अतीत से भविष्यमें ले जाता है, हितों की स्थिति को बदल देता है और कर्मचारी कीजरूरतों, हितों पर ध्यान केंद्रित करता है।

टीप–

स्थिति–एक स्थिति एक धारणा है (मेरा बॉस क्रूर और उदासीन है) या एक दावाया मांग या वांछित परिणाम (मुझे दिन में कम से कम एक बार उससेमिलने में सक्षम होना चाहिए)।

हित–एक हित में व्यक्ति की मांग व दावों को संचालित करने वाले तत्व निहितहोते है। हित एक व्यक्ति की वास्तविक आवश्यकता, चिंता, प्राथमिकता, लक्ष्यआदि होते है। यह मूर्त

(जैसे संपत्ति, धन, शेयर आदि) और / याअमूर्त (जैसे संचार, विचार, मान्यता, सम्मान, वफादारी आदि) हो सकता है।

-4 स्वीकार करना :—स्वीकारोक्ती में मध्यस्थ, मौखिक रूप से यह मान्यता प्राप्त है कि वक्ता नेसहमति या असहमति के बिना क्या कहा है। उदाहरण—मैं आपकी बातदेखता हूं या मैं समझता हूं कि आप क्या कह रहे हैं। इस तरह मध्यस्थवक्ता को आश्वासन देता है कि उसे सुना और समझा गया है।

-5 टालना या स्थगित करना—एक विशिष्ट संवाद तकनीक जहां मध्यस्थ किसी विषय परचर्चा को बाद के लिए टाल देता है। सवांद को टालते समयउस विषय को लिख देना चाहिए, जिसे उसने स्थगित कर दिया अथवा टाल दियाऔरसही समय पर विषय की चर्चा को फिर से शुरू करता है।

-6 उत्साहवर्धक :—पक्षकारों को मध्यस्थ उस समय प्रोत्साहित कर सकते हैं जब उन्हें आश्वस्तकरने, समर्थन करने या संवाद करने में सहायता की आवश्यकता होती है। जैसेकिः—आपने जो कहा वह चीजों को स्पश्ट करता है या यह उपयोगीजानकारी है।

-7 सेतु बंधन :—यह मध्यस्थ द्वारा अपनाई गई तकनीक है जो पक्षकार को निरंतर संवाद मेंसहायता करता है। उदाहरण :—''और————————'',''और फिर —————'',जैसे शब्द संवाद को प्रोत्साहितकरता है। जबकि किन्तु, परन्तु, जैसे शब्द संवाद को हतोत्साहित कर सकताहै।

-8 दोहराना :—इसमेंमध्यस्थ वक्ता के कथन या वाक्यांशों को दुहराकर वक्ता के कथन कोपुर्नस्थापित करता है, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि उसने वक्ता कोठीक से सुना और समझा है। उदाहरण :—''मेरे पति मुझपर वह/ यान नहीं देते, जिसकी मुझे आवश्यकता है''। मध्यस्थ उसी बात कोदुहराता है कि ''आपका पति आपका, आपकी जरूरत का ध्यान नहीं देता है''।

-9 भावानुवाद करना :—यह एक संवाद तकनीक है, जहां वक्ता के कथन के समान अर्थ को मध्यस्थ अपनेशब्दों में समझाता है।

-10 मौन :—यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण संवाद तकनीक पक्षकारों को अपने विचारों को समझने तथा संशाधित करने की अनुमति प्रदान करते हुए, उनकी चुप्पी केसाथ मध्यस्थ को सहज महसूस करना चाहिए।

-11क्षमा याचना :—यह दूसरे पक्ष को कारित हुई चोट और दर्द की स्वीकारोक्ति है और जरूरीनहीं कि यह अपराध की स्वीकृति हो। जब कोई पक्षकार माफी मांगने काविकल्प चुनता है तब मध्यस्थ द्वारा उसे इस बात के लिए ध्यान से और पर्याप्त रूप से तैयार किया जाना चाहिए।

उदाहरण—मुझे खेद है कि मेरे शब्दों या कार्य से आपको दुख औरपीड़ा हुई, मेरा उद्देश्य यह नहीं था कि मैं आपको चोट पहुँचाऊँ।

-12कार्य सूची तय करना:—पक्षकारों के बीच बेहतर संवाद स्थापित करने के लिए मध्यस्थ प्रभावी रूप सेविशयों, मुद्दों, स्थिति, दावों, बचाव, बंदोबस्त आदि के अनुक्रम या आदेश की संरचना करता है।यहपक्षकारों के परामर्श से या एकतरफा की जा सकती हैं।

उदाहरणके लिए, जब तनाव अधिक होता है, तो पहले काम करने के लिए आसान मुद्देका चयन करना बेहतर होता है। मध्यस्थ यह निर्धारित कर सकता है कि पहले क्या संबोधित किया जाए, ताकि बाद में निर्णय लेने के लिए आधारभूतकाम किया जा सके।

सक्रियश्रवण में बाधा या अवरोध :—

(i) **विक्षेप** :—विक्षेप बाहरी या आंतरिक हो सकते हैं। बाह्य विक्षेप केस्रोत हैं शोर, बेचेनी, रुकावट आदि। आंतरिक विकर्षण के स्रोतथकावट, ऊब, पूर्वाग्रह, चिंता, अधीरता आदि हैं।

(ii) **अपर्याप्त समय** :—धैर्य पूर्वक सुनने की सुविधा उपलब्ध कराने के लिएपर्याप्त समय होना चाहिए।

(iii) **पूर्व—निर्णयन** :—एक मध्यस्थ को पक्ष और उनके रवैये, मकसद याइरादे का पूर्वाग्रह नहीं रखना चाहिए।

(iv) **दोष देना** :—जो भी हुआ है उसके लिए एक मध्यस्थ को किसीभी पक्षकार को दोषी नहीं ठहराना चाहिए।

(v) **अनमयस्क मनःस्थिति** :—मध्यस्थ को आधा सुनने वाला या असावधान नहींहोना चाहिए।

(vi) **भूमिका को लेकर भ्रम** :—मध्यस्थ को अपनी भूमिका सलाहकार यापरामर्शदाता या सहायक के रूप में नहीं माननी चाहिए। उसे केवल विवाद केसमाधान की सुविधा प्रदान करनी चाहिए।

(vii) **स्वयं अपने तर्क या विचार थोपना** :—मध्यस्थ को पक्षकारों के साथबहस नहीं करनी चाहिए और न ही उन पर अपने विचार थोपने का प्रयास करनाचाहिए।

(viii)आलोचना करना

(ix) परामर्शदेना

(x) उपदेश देना

(xi) विश्लेषण करना

(B)सहानुभूति के साथ सुनना :—

मध्यस्थताप्रक्रिया में, सहानुभूति का अर्थ मध्यस्थों की पक्षकारों की भावनाओंऔर जरूरतों को समझने और उनकी सराहना करने की क्षमता है, औरउनके साथ समझौते या असहमति व्यक्त किए बिना, ऐसी समझऔर प्रशंसाव्यक्त करना है।

मध्यस्थद्वारा दिखाई गई सहानुभूति वक्ता को कम भावनात्मक और अधिकव्यावहारिक और उचित बनने में मदद करती है। मध्यस्थ को समझना चाहिएकि संवेदना, सहानुभूति से अलग है। संवेदना में ध्यान का केन्द्र वक्ताहोता है जबकि सहानुभूति में ध्यान का केन्द्र श्रोता होता है।

उदाहरण—

पत्नी— ''आज मेरे काम का बहुत कठिन दिन था।''
पति— ::मुझे बहुत खेद है कि आपके काम का कठिन दिन था।''
(श्रोता/पतिपर ध्यान केंद्रित है)
पति— ''आपके काम का एक कठिन दिन था, मेरा तो ओर बुरा था।''
(श्रोतापति पर ध्यान केंद्रित)
पति— "तुम्हें लगता है कि आज तुम्हारे लिए काम करना मुश्किल था। क्याआप इसके बारे में बात करना चाहेंगे? "
(स्पीकर/पत्नीपर ध्यान केंद्रित)

सहानुभूतिप्रदर्शन एक अच्छी संवाद तकनीक है जिसका उपयोग सहानुभूति व्यक्त करने केलिए किया जाता है।

(C)शारीरिक हाव–भाव

श्रोताकी उपयुक्त शारीरिक हाव–भाव, वक्ता को इंगित करती है कि श्रोता सचेतहै। यह वक्ता को बताता है कि श्रोता सुनने में रूचि रखता है और श्रोतावक्ता को महत्व देता है।

मध्यस्थतोंके लिए उचित शारीरिक हाव–भाव अग्रलिखित प्रकार के हो सकते है–

(क)संतुलित मुद्रा –यह मध्यस्थ के आत्मविश्वास और रुचि को दर्शाता है।

(ख)शांतिप्रिय नजरिया –इससे पक्षकारों का आत्मविश्वास बढ़ता है।

(ग)मुस्कुराता हुआ चेहरा –यह पक्षकारों को सहजता से पेश करता है।

(घ)स्पीकर की ओर धीरे सेझुकना –यह ध्यान से सुनने का संकेत है।

(ड)स्पीकर के साथ उचित नेत्र संपर्क –यह निरंतर ध्यान सुनिश्चित करता है।

(D) सही सवाल पूछना

मध्यस्थताकार्यवाही में मध्यस्थ द्वारा जानकारी इकट्ठा करने या तथ्यों, पदों और हितों को स्पष्ट करने या पक्षकारों की धारणा को बदलने के लिएप्रश्न पूछे जाते है। प्रश्न प्रासंगिक और उचित होने चाहिए। फिर भी सवालकरना एक कला है, जिसका उपयोग विवेक और संवेदनशीलता के साथ कियाजाना चाहिए। पूछताछ का समय और संदर्भ महत्वपूर्ण होता हैं। विभिन्नप्रकार के प्रश्न अलग–अलग समय पर और अलग–अलग संदर्भ में उचितहोंगे। उपयुक्त प्रश्न यह भी प्रदर्शित करेगा कि मध्यस्थ सुन रहा है औरपार्टियों को बात करने के लिए प्रोत्साहित कर रहा है। हालांकि, पूछताछकी शैली प्रतिपरीक्षा की शैली नहीं होनी चाहिए। प्रश्न में पूर्वाग्रह,पक्षपात, निर्णय या आलोचना का संकेतक नहीं होना चाहिए। सही प्रश्न पक्षकारों और मध्यस्थों को यह समझने में मदद करते हैं कि मुद्देक्या हैं।

प्रश्नोंके प्रकार :

(अ) **मुक्त प्रश्न** :–ये ऐसे प्रश्न हैं जो पक्षकार को अधिक जानकारी प्रदानकरने या अपनी स्थिति स्पष्ट करने, चर्चा की दिशा का नियंत्रण बनाएरखने और अपने

स्वयं के दृष्टिकोण को बनाए रखने का एक अवसरप्रदान करेंगे। ये दायरे में व्यापक और सामान्य हैं।

उदाहरण– **"**क्याआप मुझे विशय के बारे में अधिक बता सकते हैं?''

''आगेक्या हुआ?''

''आपकादावा क्या है?''

''आपवास्तव में क्या हासिल करना चाहते है?''

(ख) अवरूद्ध प्रश्नः–ये प्रश्न अपने क्षेत्र में विशिश्ट, सीधे एवं केन्द्रित होकर सीमित होते हैं। ऐंसे प्रश्न सारांश में तथ्य आधारित तथा तथ्यात्मक सूचनाओं को प्राप्त करने वाले होते हैं। ऐंसे प्रश्नों का उत्तर ''हॉ'' या ''नहीं'' या अतिलघु उत्तर हो सकता है और किसी विशेष विषय पर विचार–विमर्श को समाप्त किया जा सकता है।

उदाहरणः–''व्यक्ति किस रंग की कमीज पहने हुए था ?''
''किस दिनांक को अनुबंध पर हस्ताक्षर किये गए थे ?''

''तुम्हारे मेडीकल बिल का कुल भुगतान कितना है ?''
''जिस समय घटना कारित हुई क्या उस समय आप बाजार में मौजूद थे ?''

(स) परिकल्पित प्रश्नः–परिकल्पित प्रश्न वे प्रश्न है जो पक्षकारों को नए विचार एवं विकल्प प्रस्तुत करने की अनुमति देते हैं।

उदाहरणः–''क्या होगा यदि विवादित संपत्ति को शासन द्वारा उपार्जित कर लिया जाता है?''

''क्या होगा यदि आपके पति पैतृक घर से बाहर निकलने का प्रस्ताव देते हैं और पृथक निवास करते हैं ?''

अन्य प्रकृति के प्रश्न जैसे सूचक प्रश्न एवं जटिल प्रश्न सामान्यतः मध्यस्थता के दौरान नहीं पूछें जाते हैं क्योंकि ऐंसे प्रश्न मध्यस्थता प्रक्रिया को कोई सहायता प्रदान नहीं करते हैं।

अध्याय 10

मध्यस्थता में समझौता–वार्ता और सौदेबाजी

यद्यपि समझौता वार्ता और सौदेबाजी के शब्द प्रायः समानार्थी रूप से प्रयुक्त किये जाते हैं, किन्तु मध्यस्थता में इन दोनों शब्दों के मध्य एक भेद है। समझौता–वार्ता में सौदेबाजी सम्मिलित है और सौदेबाजी, समझौता–वार्ता का एक अंश है। समझौता–वार्ता ऐसे संप्रेषण या संवाद की प्रक्रिया को बतलाती है जो उस समय उत्पन्न होती है जबकि पक्षकारगण अपने विवाद को सुलझाने के प्रयास में एक परस्पर स्वीकृत समाधान को प्राप्त करना चाहते हैं। समझौता–वार्ता में विभिन्न प्रकृति की सौदेबाजी सम्मिलित हो सकती है।

समझौता–वार्ता क्या है ?

मानव जीवन में निर्णय लेने की प्रक्रिया में समझौता वार्ता एक महत्वपूर्ण विधा या शैली का स्थान रखती है। समझाईश के प्रयोजन हेतु संवाद करना ही समझौता–वार्ता है। सार रूप में मध्यस्थता समझौता–वार्ता की प्रक्रिया है। मध्यस्थता में, विवाद के पक्षकारों के बीच होने वाले आगे–पीछे या इधर–उधर के संप्रेषण की प्रक्रिया इस प्रकार प्रयुक्त होती है जिससे उभयपक्ष के बीच किसी अनुबंध तक पहुँचा जा सके । मध्यस्थता में समझौता–वार्ता का प्रयोजन पक्षकारगण को उनके बीच किसी ऐंसे अनुबंध तक पहुँचने में सहयोग करना है जिसे उभयपक्ष यथासंभव संतोषप्रद या यथेष्ट मानते हैं। मध्यस्थ द्वारा पक्षकारगण को उनके द्वारा किये जा रहे समझौता–वार्ता में विरोधात्मक दृष्टिकोण से पृथक करते हुए समस्या समाधान और हितकारी या कल्याणकारी दृष्टिकोण तक ले जाने का कार्य किया जाता है। मध्यस्थ द्वारा एक पक्षकार से प्राप्त किये गए प्रस्ताव को दूसरे पक्षकार तक पहुँचाने का कार्य तब तक किया जाता है जब तक की एक परस्पर स्वीकृत समझौता प्राप्त नहीं हो जाता। इस प्रक्रिया को ''शटल कूटनीति'' के रूप में जाना जाता है। प्रत्येक समझौता–वार्ता जो उभयपक्ष के गुण–दोष तथा रूचियों पर आधारित होता है उसे आदर्श समझौता–वार्तामाना जाता है और इसका परिणाम एक स्पष्ट समझौते के रूप में होता है जिस से पक्षकारगण के मध्य के संबंध संरक्षित और सुधारात्मक होते हैं।मध्यस्थ द्वारा समझौता वार्ता में ऐसे उपाय किये जाते हैं जो यथार्थ परीक्षण, बुद्धिकारक विचार, प्रस्तावों के आदान–प्रदान तथा गतिरोध आदि को समाप्त करने वाले होते हैं।

कोई समझौता–वार्ता क्यों करे ?

(अ) किसी के विचार बिन्दु, दावे तथा रूचियों को एक दिशा में रखने के लिए।

(ब) शोषण या उत्पीड़न को प्रतिबंधित करने के लिए।

(स) अन्य पक्ष से सहयोग प्राप्त करने के लिए।

(द) मुकदमेबाजी को टालने के लिए।

(ई) परस्पर स्वीकृत अनुबंध तक पहुँचने के लिए।

समझौता–वार्ता की पद्धतियाँ

(1) परिवर्जनीय पद्धतिनिष्क्रिय और असहयोगी : सहभागी द्वारा समस्या का विरोध या सामना नहीं किया जाता अथवा मामले को संबोधित नहीं कियाजाता है।

(2) सामंजस्य पद्धति निष्क्रिय और सहयोगी : ऐसा पक्ष अपनी स्वरूचि बाबत् दृढनहीं रहता है और दूसरे पक्ष की रूचियों के साथ सामंजस्य करता है। इस स्थिति में परित्याग के तत्व मौजूद हो सकतेहै।

(3) समझौताकारक पद्धतिसकियता का सीमित स्तर और सहयोग : ऐसा पक्ष इस विवके या विचार का होता है कि, किसी समाधान तक पहुँचने के लिए उभयपक्ष द्वारा अपनी–अपनी ओर से कुछ परित्याग करना चाहिए वह अपनी जरूरत या जिज्ञासाओं को स्वेच्छा से कम करने के लिए तैयार रहता है। दृश्यमान समानता का प्रभाव दिया जायेगा ।

(4) प्रतिस्पर्धात्मक पद्धतिसकिय और असहयोगी : ऐसा पक्ष केवल अपने स्वरूचियों को ही महत्व देता है और दूसरे पक्ष की रूचियों के संबंध में उसे सरोकार या दिलचस्पी नहीं होती है। वह आक्रमक होता हैऔर अपनी जरूरतों पर बल देता है।

(5) सहयोगात्मक पद्धतिसकिय, सहयोगी और रचनात्मक : ऐसा पक्ष न केवल अपनीस्वरूचियों को महत्व देता है बल्कि अन्य पक्ष की रूचियों को भी ध्यान में रखता है वह समझौता–वार्ता में सकिय रूप से भाग लेता है और मामले की गहराई तक जाकर उसे समझने का प्रयास करने का कार्य करता है ताकि सभी पक्षों के यथासंभव आवश्यक सीमा तक एक परस्पर स्वीकृत समाधान तक पहुँचा जासके।

सौदेबाजी क्या है ?

सौदेबाजी समझौता–वार्ता का एक भाग है। यह टकराव को नियंत्रित करने की एक तकनीक है यह उस स्थिति में प्रारंभ होती है जबकि पक्षकार समाधानकारी शर्तों के विषय में विचार–विमर्श करने के लिए सहमत होते हैं।

समझौता वार्ता में उपयोग होने वाली सौदेबाजी के प्रकार

सौदेबाजी कई प्रकार की होती है। समझौता–वार्ता में निम्नलिखित में से एक या एक से अधिक प्रकार की सौदेबाजी अंर्तवलित होती है :

(1) वितरणकारी सौदेबाजी

(2) रूचि आधारित सौदेबाजी

(3) संपूर्णात्मक सौदेबाजी

(i) वितरणकारी सौदेबाजी : यह सौदेबाजी का रूढिगत, परम्परागत तरीका है जिसमें पक्षकारगण अपने नियत संसाधन (जैसे संपत्ति, धन, परिसंपत्ति, कंपनी की उपलब्धियॉ, वैवाहिक संस्थिति, प्रोबेट संपदा इत्यादि) को विभाजित या निर्धारित करते हैं। वितरणकारी सौदेबाजी में पक्षकारगण आवश्यक रूप से अपनी अथवा दूसरे पक्ष की रूचियों को नहीं समझ सकते हैं। अतः उस स्थिति में प्रायः निपटारे के मौलिक समाधान को नहीं खोज पाते हैं। यह स्थिति जीत–हार के निष्कर्ष तक पहुॅचती है अथवा ऐसे समझौते के रूप में परिणत हो जाती है जिससे प्राप्त होने वाले निष्कर्ष को कोई भी पक्ष यथेष्ट रूप से संतुष्ट नहीं होता है। वितरणकारी सौदेबाजी को प्रायः ''शून्य परिमाण खेल'' के रूप में जाना जाता है जहॉ एक पक्ष को होने वाला लाभ दूसरे पक्ष को कारित समतुल्य हानि के रूप में निष्कर्षित होता है। वितरणकारी सौदेबाजी के दो रूप इस प्रकार हैः–

स्थितिकारक सौदेबाजीः स्थितिकारक सौदेबाजी में, मुख्य रूप से, पक्षकारगण की स्थिति (यथा प्रस्ताव और खण्डन प्रस्ताव) केन्द्र बिन्दु के रूप में होती है। इस प्रकार की सौदेबाजी में पक्षकारगण सामान्य रूप से अपनी स्थितियों के बारे में बात करते हैं। उनके बीच आपसी रूचियों के बारे में या शर्तों और छूट या पृथकिकरण के संदर्भ में कोई विचार–विमर्श नहीं किया जाता है। यह समझौता वार्ता की सबसे अधिक मूल आधारित पद्धति है जिसे प्रायः पक्षकारों द्वारा प्रथम तरीके के रूप में प्रयोग किया जाता है। प्रत्येक पक्ष अपनी एक स्थिति नियत कर लेता है और उसके लिए तर्क प्रस्तुत करता है और समाधान तक पहुॅचने के लिए रियायत देने का प्रयास भी करता है। यह एक प्रतियोगी कूटनीति है। कई मामलों में पक्षकारगण कभी भी सहमत नहीं होते और यदि वे समाधान के लिए सहमत हो भी जाते हैं तो उनमें से कोई भी पक्ष ऐसे समाधान की शर्तों से संतुष्ट नहीं होता है।

उदाहरणः— वरूण और विवेक एक कमरे के भीतर झगड़ा कर रहे हैं। वरूण खिड़की को खोलना चाहता है जबकि विवेक उसे बंद रखना चाहता है। वे दोनों इस बारे में तर्क करते रहते हैं, कि खिड़की का कितना खुला रखा जावे — थोड़ा सा, आधा, दो तिहाई।

अधिकार आधारित सौदेबाजीः इस प्रकृति की सौदेबाजी में समझौता—वार्ता का आधार पक्षकारों के अधिकारों पर नियत रहता है। इसमें इस बात पर बल दिया जाता है कि, कौन सही है और कौन गलत है । उदाहरण के लिए, ''तुम्हारा मुवक्किल लापरवाह है। अतः वह मेरे मुवक्किल को क्षतिपूर्ति देने के लिए उत्तरदायी है।'' ''तुम्हारे मुवक्किल ने अनुबंध का उल्लंघन किया है, अतः मेरा मुवक्किल अनुबंध के आधार पर हर्जाना प्राप्त करने का अधिकारी है।''

कई समझौता—वार्ताओं में अधिकार आधारित सौदेबाजी एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। जैसा कि वह पक्षकारों के उत्तरदायित्वों को विश्लेषित और परिभाषित करती है। प्रायः इसका उपयोग स्थैतनिक सौदेबाजी के साथ संयुक्त रूप में किया जाता है। (यथा ''तुम्हारा मुवक्किल लापरवाह था इसलिए मेरे मुवक्किल को × राशि क्षतिपूर्ति हेतु देय होगी।'') जहॉं पक्षकारगण अपने विशिष्ट अधिकारों और उत्तरदायित्वों के निर्वचन में भिन्नता रखते हैं वहॉं अधिकार आधारित सौदेबाजी एक गतिरोध के रूप में प्रकट होती है।

वितरणकारी सौदेबाजी के नकारात्मक परिणाम इस प्रकार हैंः—

(अ) प्रायः कठोर कदम उठाने से संबंधों की समाप्ति हो जाती है।
(ब) सृजनात्मक समाधान नहीं खोजे जाते हैं। और उभयपक्ष की रूचियॉं पूर्ण रूप से संतुष्ठ नहीं हो पाती।
(स) समय क्षयकारक
(द) उभयपक्ष द्वारा अतिगामी स्थिति लेने से परिणाम गतिरोध के रूप में होता है।

(ii) हित आधारित सौदेबाजी : इसमेंउभय पक्षकार की रूचियों, तथ्यों और विधि पर आधारित होकर एक परस्पर लाभप्रद करार विकसित किया जाता है। रूचियों के अंतर्गत जरूरत, आकांक्षा, लक्ष्य तथा प्राथमिकताएॅं सम्मिलित होती हैं। यह एक सहयोगपूर्ण समझौता—वार्ता की रणनीति है जिससे सभी पक्षकारगण को परस्पर लाभ होता है अर्थात ''जीत—जीत''। इस सौदेबाजी में पक्षकारगण की रूचियों, उनके संयुक्त मूल्यांकन और विवाद का समाधान करने की सामर्थ्य होती है। यह आपसी संबंधों को संरक्षित और संवंर्धित करती है। इसमें सिद्धांतकारी समझौता—वार्ता के सभी तत्व मौजूद होते हैं और

इसका उपयोग उन मामलों में किया जाना प्रस्तावित होता है जहॉ पक्षकारगण अविरत संबंधों को धारित करते हैं और/अथवा वे अपने हितों को संरक्षित करना चाहते हैं।

उदाहरणः—दो बहनों की कहानी में एक संतरे के लिए झगड़ा हो रहा है वे यह तय करती हैं कि, संतरे को आधा काट कर आपस में बांट लें यद्यपि वे दोनों ही इस स्थिति से प्रसन्न नहीं है क्योंकि यह तरीका पर्याप्त रूप से उनके हितों को संतुष्ट नहीं करेगा। उनकी माता वहॉ आकर प्रत्येक के वास्तिविक हित के संबंध में जानकारी लेती हैं। एक बहन कहती है कि, उसे संतरे के रस की आवश्यकता है जबकि दूसरी को छिले संतरे की आवश्यकता है। एक ही संतरे से दोनों पक्षों की रूचियों को संतुष्ट किया जा सकता है। दोनों बहनें प्रसन्न होकर चली जाती है।

हित आधारित सौदेबाजी हेतु तीन उपाय

हित आधारित सौदेबाजी के लिए तीन आवश्यक कदम हैं :—

(अ) पक्षकारगण की हितों को पहचानना।

(ब) पक्षकारगण की हितों को प्राथमिकता देना।

(स) पक्षकारों को सहयोग करना जिससे वे करार/सुलह की शर्तों को विकसित कर सकें व अपने सर्वाधिक महत्वपूर्ण हितों को प्राप्त कर सकें।

(3) एकीकृत सौदेबाजीः एकीकृत सौदेबाजी को हित आधारित सौदेबाजी का विस्तार कहा जाता है। एकीकृत सौदेबाजी में पक्षकारगण अपने हितों का एकीकरण कर अपनी समस्या को विस्तारित करते हैं और समाधान के लिए अतिरिक्त विकल्प को खोजते हैं और संभावित शर्तों को विकसित करते हैं। पक्षकारगण ''सुखद पहलू'' को तलाशने के लिए समाधान की शर्तों में परिवर्तन या परिवर्धन करने के सृजनात्मक तरीके अपनाते हैं ।

वरूण और विवेक के बीच कमरे में चल रहे झगड़े के पूर्ववर्ती उदाहरण को आगे बढ़ाते हैं। अशोक कमरे में आता है और झगड़े के बारे में पूछतॉछ करता है। विवेक का कहना है कि उसके चेहरे पर ठण्डी हवा आ रही है जो उसे कष्टप्रद है। वरूण कहता है कि, कमरे में कम हवा का प्रसार घुटन भरा है और उसे कष्टप्रद है। अशोक उस कमरे से लगे हुए कमरे की खिड़की को खोल देता है और बीच के दरवाजे को खुला रखता है। दोनों पक्षकार प्रसन्न हैं। वरूण के चेहरे पर सीधे ठण्डी हवा नहीं लग रही है और कमरे में हवा का पर्याप्त संचरण होने से विवेक सुखद अनुभव करता है।

जब उभयपक्षकारगण की रूचियों और आवश्यकताओं को चिन्हित् कर लिया जाता है तब उभयपक्ष की रूचियों को एकीकृत करना आसान होता है और परस्पर स्वीकृत समाधान निकाला जा सकता है।

एकीकृत समझौता सौदे का एक अन्य उदाहरण। एक कार विक्रेता नयी कार के मूल्य के मुद्दे को लेकर ग्राहक के साथ एक गतिरोध की स्थिती पर पहुॅच सकता है। सौदे को खोने की जगह पर कार विक्रेता कार के मूल्य को बरकार रखते हुये सौदे के भाग के रूप में चमड़े के आर्कषक गद्दी का प्रस्ताव करेगा। यदि आवश्यक होगा तो विक्रेता ग्राहक के पुरानी कार को अच्छी कीमत में विक्रय में सहायता करने के लिये भी सहमत हो सकता है।

चमड़े की आर्कषक गद्दी एवं पुरानी कार के विक्रय में सहायता का प्रस्ताव एकीकृत शर्ते है, क्योंकि वे एक खोज का परिणाम है कि अतिरिक्त शर्ते या लेन–देन ग्राहक की रूचि की हो सकती है। इसी प्रकार, मध्यस्थ सम्भावित और वांछित अतिरिक्त शर्ते और लेन–देन की खोज सक्रियता पूर्वक करके गतिरोध को दूर करने या उस पर विजय प्राप्त करने में पक्षकारों की सहायता कर सकता है।

नोटः–

प्रास्थितिः एक प्रास्थिति एक विशेष दृष्टिकोण (जैसे मेरा स्वामी क्रूर व उदासीन है।) या वांछित परिणाम (मेरे स्वामी को बात करने के लिये एक दिन मुझसे मिलना चाहिये) है। दावा या मांग अपने आप में एक प्रास्थिति है।

हितः किसी व्यक्ति का हित उसकी वास्ताविक आवश्यकता,चिंता,प्राथमिकता,ध्येय आदि है। यह अमूर्त (सरलता से बोधगम्य नहीं) हो सकती है, जैसे– सम्मान, निष्ठा, निर्भरता, समय इत्यादि। एक हित वह है जो नीचे रहते हुये व्यक्ति के मांग या दावे को प्रेरित करता है।

समझौता वार्ता की बाधाएं–

1. रणनीतिक बाधा
2. स्वामी एवं प्रतिनिधि की बाधा
3. ज्ञानात्मक बाधा (वैचारिक बाधा)

1)**रणनीतिक बाधाः**

एक रणनीतिक बाधा पक्षकार द्वारा अपने ध्येय की प्राप्ति के लिये प्रयुक्त की गयी रणनीति से उत्पन्न होती है। उदाहरण के लिये – तलाक पाने के लिये पति की सहमति प्राप्त करने के दृष्टिकोण से एक पत्नी अपने पति और उससे परिवार के सदस्यों के विरूद्ध भारतीय दण्ड संहिता की धारा 498 क के अपराध के अंतर्गत का अरोप लगाते हुये झूठा परिवाद प्रस्तुत करती है।

एक मध्यस्थ पक्षकारों के बुनियादी हितों के बारे में सूचना प्राप्त करके और पक्षकार की रणनीति समझते हुये उन्हें रणनीतिक बाधाओं पर विजय प्राप्त करने के लिये प्रोत्साहित कर सकता है।

2)स्वामी एवं प्रतिनिधि बाधाः

स्वामी के लिए समझौतावार्ता करने वाले प्रतिनिधि का व्यवहार स्वामी के हित की रक्षा में विफल हो सकता है । स्वामी और प्रतिनिधि के मध्य हितों का आपसी विवाद हो सकता है। एक प्रतिनिधि के पास, समझौता वार्ता के लिये अपेक्षित पूर्ण सूचना या स्वामी के तरफ से कोई वादा करने का प्राधिकार, नहीं हो सकता है । इन सभी परिस्थितियों में मध्यस्थ, ''स्वामी और प्रतिनिधि बाधा'' को समाप्त करने में पक्षकारों की सहायता वास्तविक निर्णयकर्ता (स्वामी) को वार्ता पटल पर ला कर कर सकता है ।

3) ज्ञानात्मक बाधाः

समझौता वार्ता करते समय पक्षकारों के निर्णय उनके पास उपलब्ध सूचना पर आधारित होते हैं । लेकिन कभी कभी सूचनाओं को व्यवस्थित करने के रास्ते के बारे में सीमाएं हो सकती हैं । मानवीय प्रकृति के कारण वैचारिक सीमाएं हो सकती हैं और या मनोवैज्ञानिक कारक समझ की सीमा हो सकती है । यह वैचारिक सीमाएं ज्ञानात्मक बाधाएं कहलाती हैं और समझौता वार्ता को बाधित कर सकती हैं । मध्यस्थ के लिए यह महत्वपूर्ण हो जाता है कि वह ज्ञानात्मक बाधाओं की पहचान करे और उस पर विजय प्राप्त करने के लिए संसूचना तकनीकी का प्रयोग करे ।

ज्ञानात्मक बाधा के उदाहरण –

जोखिम प्रतिकूलता : लाभ के संबंध में लोग जोखिम उठाने के अनिच्छुक होते हैं और वे निश्चित लाभ की जगह पर अनिश्चित बड़ा लाभ प्राप्त करने के इच्छुक होते हैं। वे लोग क्षति के संबंध में जोखिम लेने के लिए तैयार रहते हैं। वे निश्चित हानि से बचते हुए अधिक हानि का जोखिम लेते हैं । उदाहरण के लिए, कुछ पक्षकार विचारण के भविष्यवर्ती अनिश्चित परिणाम के लिए मध्यस्थता में हुए समझौते से उत्पन्न निश्चित क्षति को स्थगित करते हैं। एक अच्छा मध्यस्थ इन वास्तविकताओं पर ध्यान दिलाने में पक्षकारों की सहायता करेगा।

समावेशी पक्षपात : समझौता वार्ताकारों की प्रवृत्ति प्रतिकूल सूचनाओं को टालने की होती है । उदाहरण के लिए, एक न्यायिक निर्णय जो मामले को प्रभावित कर सकता है । इसके निवारण हेतु, महत्वपूर्ण सूचनाओं को दोहराना, दस्तावेजी एवं अन्य मूर्त साक्ष्य को उपलब्ध कराना और सूचनाओं को लेखबद्ध करना, चाहिए ।

असावधानीपूर्ण अंधता : समझौता वार्ताकार कभी–कभी सम्पूर्ण मामले पर ध्यान देने में विफल हो जाते हैं और इसके बदले केवल विशेष विवरण पर ध्यान देते हैं। इसके निवारण हेतु मध्यस्थ उनके ध्यान को बार–बार विशेष दृश्य से वृहद दृश्य की ओर परिवर्तित कर सकता है ।

प्रतिकियात्मक अवमूल्यंन : विवाद के पक्षकारों की यह प्रवृत्ति होती है कि वे दूसरे पक्ष से किए गए प्रस्ताव का मूल्यांकन कम करके करते हैं । इसके निवारण के लिए मध्यस्थ प्रस्ताव के स्त्रोत पर ध्यान के स्थान पर प्रस्ताव के शर्तों पर ध्यान परिवर्तित कर सकता है। उदाहरण के लिए यह कहने के बजाय कि ''वादी 5 लाख का प्रस्ताव करता है'' मध्यस्थ यह कह सकता है कि ''क्या आप 5 लाख जैसी वस्तु से संतुष्ट होंगे'' ।

अक्षयनिधि प्रभाव : लोगों की यह प्रवृत्ति होती है कि वह संपत्ति एवं किसी वस्तु में अपने हित को बहुत अधिक मूल्यांकित करते हैं। (उनके अपने घर, अपनी जमीन, अपने मामले में अधिवक्ता का मूल्यांकन इत्यादि)। इसके निवारण हेतु, मध्यस्थ उपपंजीयक के मूल्यांकन जैसे वस्तुनिष्ठ मापदंड का प्रयोग कर वास्तविक मूल्य की जांच कर सकता है, अपनी बात के समर्थन में नवीन न्यायायिक निर्णय के बारे में बता सकता है या कह सकता है ।

मनोवैज्ञानिक बाधाएं :

लोग दूसरे पक्ष के उद्‌देश्य एवं आशय के बारे में अवांछित धारणाएं बनाते हैं ।

आधार मूल्य, वांछित मूल्य एवं आरक्षित मूल्य :

अर्थपूर्ण एवं सफल समझौता वार्ता को सुगम बनाने के लिए मध्यस्थ को आधार मूल्य, वांछित मूल्य एवं आरक्षित मूल्य से अवगत होना चाहिए ।

<u>आधार मूल्य</u> एक आधार नंबर या शर्तों का निकाय या प्रारंभिक प्रस्ताव है जो पक्षकारों द्वारा दिए गए सूचना के आधार पर मध्यस्थ द्वारा मूल्यांकित किया जाता है । यह समझौता वार्ता में एक मानक की तरह काम करेगा । यदि आधार मूल्य उचित रूप से निर्धारित किया जाता है तो पश्चात्‌वर्ती सामन्जस्य के लिए पक्षकार उसे एक वास्तविक और वैध कसौटी के रूप में प्रयोग करते हैं । यह पूर्ण सूचना पर आधारित होना चाहिए और यदि ऐसा नहीं है तो वह भ्रम पैदा कर सकता है । गलत या भ्रमपूर्ण आधार मूल्य बाधा के अवसर को बढ़ा सकता है और समझौता वार्ता में अनपेक्षित परिणाम ला सकता है ।

<u>वांछित मूल्य</u> वह मूल्य है जो समझौता वार्ता से पक्षकार प्राप्त करने की वांछा या इच्छा रखते हैं ।

आरक्षित मूल्य वह सबसे न्यूनतम मूल्य है जो प्राप्त करने के लिये पक्षकार तैयार रहता है।

सैद्धांतिक समझौता वार्ता के तत्व

(क) पक्षकारों को समस्या से पृथक करना

एक मध्यस्थ को पक्षकारों को अपनी समस्याओं से पृथक करने में सहायता करनी चाहिए ।

उदाहरण के लिए, यदि अपर्णा पिछले दो सप्ताह से लगातार देरी से काम पर आ रही है तो यह विचार उत्पन्न हो सकता है कि ''अपर्णा एक समस्या है''। यदि इस दृष्टि से देखा जाये तो इस समस्या से छुटकारे का एक मात्र रास्ता अपर्णा से छुटकारा (निलंबन, स्थानांतरण इत्यादि) पाना होगा । यह व्यक्ति का समस्या के साथ विलय का एक उदाहरण है और यह व्याख्या करता है कि कैसे समस्या के समाधान के लिए उपलब्ध विकल्प का क्षेत्र सीमित है । लोगों को समस्या से पृथक करने की कुंजी यह है कि व्यक्ति से स्वतंत्र रहते हुए मात्र समस्या पर ध्यान दिया जाये । उपरोक्त उदाहरण में नियोजक को ''समयबद्धता की कमी'' को समस्या के रूप में मानना चाहिए था । नियोजक अपर्णा से कई वर्षों के उसके समय पर आने के बारे में पूछ सकता है और विगत दो सप्ताहों से देर से आने के कारण के बारे में, विशेषकर उन परिस्थितियों के बारे में जो अपर्णा के विलम्ब का कारण है, पूछताछ कर सकता है । वह यह उत्तर दे सकती है कि हाल ही में उसके साथ वाहन दुर्घटना हुई थी और उसका वाहन शीघ्र ही ठीक हो जाएगा । वह यह कह सकती थी कि सड़क के बनने के कारण उसे अपना रास्ता परिवर्तित करना पड़ा या वह यह कह सकती थी कि उसे कार्यस्थल पर आने के लिए सहभागिता के आधार पर कार से आना पड़ा और उसके ड्राईवर को अस्थायी समस्या होने के कारण विलम्ब हुआ । इस प्रकार समस्या पर ध्यान केन्द्रित करने से नियोजक द्वारा समस्या के मूल को समझने के लिए दरवाजे खोले गये, जो समस्या के निराकरण के अनेक विकल्पों की ओर इंगित कर सकता है ।

(ख) विषय पर कठोर एवं व्यक्ति पर नरम

विषय या मुद्दे पर कठोर होते हुए मध्यस्थ दोनो पक्षकारों से क्षति के दस्तावेजीकरण का निवेदनकरेगा, संख्याओं की शुद्धता परीक्षित करेगा और दोनो पक्ष के साक्ष्य की पुष्टि करेगा । उसी समय पर (साथ ही साथ) मध्यस्थ पक्षकारों को इस बात के लिए भी प्रोत्साहित करेगा कि वे एक दूसरे के प्रति विनम्र एवं सौहार्दपूर्ण व्यवहार करें और मध्यस्थ स्वयं भी इन गुणों को मध्यस्थता के दौरान प्रदर्शित करेगा ।

(ग) हित पर ध्यान

समझौता वार्ता में प्रास्थिति की जगह पर हित पर ध्यान देना चाहिए । अतः मध्यस्थ को पक्षकारों की सहायता इस बारे में करनी चाहिए कि वे अपना ध्यान प्रास्थिति से हटाकर हित पर लगाएं ।

(घ) विकल्पों की विविधता रचना

मध्यस्थ से यह अपेक्षित है कि वह विविध विकल्पों को प्रकट करने एवं पक्षकारों को सबसे अधिक स्वीकार्य विकल्प चुनने में मदद करें ।

(ङ) वस्तुपरक मापदंड पर भरोसा करना

जब पक्षकारों के मत में भिन्नता हो तब उचित मामलों में, विकल्पों का आकलन करने और समझौते पर पहुँचने के लिये, पक्षकारों द्वारा वस्तुपरक मापदंड, जैसे विशेषज्ञ मत, वैज्ञानिक ऑकड़ा, मूल्यांकन प्रतिवेदन, आकलनकर्ता का प्रतिवेदन इत्यादि, को अपनाया जा सकता है।

अन्तर्निहित हितों के पहचान के लिये एक अभ्यास

मोहन इण्डस्ट्रीज विरूद्ध ऑल इण्डिया एक्सप्रेस

मोहन इण्डस्ट्रीज के तथ्य–

एक छोटे प्लास्टिक अपूर्तिकर्ता कंपनी, जो मोहन इण्डस्ट्रीज के नाम से जानी जाती है, के स्वामी मध्यस्थ मामले के एक पक्षकार है। वह बड़े निर्माता कंपनी ऑल इण्डिया एक्सप्रेस (''ऑलइण्डिया'') के साथ संविदा विवाद मामले में प्रतिवादी है। विवाद मुख्यतः इसके इर्द–गिर्द है कि कंपनी द्वारा ऑल इण्डिया को की जाने वाली आपूर्ति का लदान विगत तीन माह से 7–10 दिन लेट हो रहा था। इसके परिणाम स्वरूप ऑल इण्डिया द्वारा अपने ग्राहकों को माल भेजने में विलंब होने लगा जिसके संबंध में ग्राहकों ने शिकायत शुरू कर दी। तीन महीने के पूर्व तक मोहन इण्डस्ट्रीज ऑल इण्डिया को समय पर माल भेजते थे।

ऑल इण्डिया के अधिवक्ता ने मांग किया कि मोहन इण्डस्ट्रीज लदान समय पर करे और तीन महीने के लदान में विलंब के कारण हुये क्षति के लिये प्रतिपूर्ति करे। यदि न्यायालय में प्रकरण चलता रहता है तो संभवतः ऑल इण्डिया संविदा भंग के वाद को जीत जायेगी।

मोहन इण्डस्ट्रिज का ऑल इण्डिया के साथ विगत दस वर्षों से आपूर्ति संविदा के अंतर्गत एक लाभदायक व्यावसायिक संबंध रहा था। मोहन इण्डस्ट्रिज के लिये यह लाभदायक होगा कि वह भविष्य में भी ऑल इण्डिया के साथ कार्य करे।

लदान में विगत तीन माह से देरी का यह कारण रहा है कि मोहन इण्डस्ट्रिज अच्छी सेवा के लिये अपने कम्प्यूटरों का उन्नयन कर रहा है। यह एक अस्थायी समस्या है जो संभवतः तीन और माह में समाप्त हो जायेगी। उनके कार्यशील खर्चे का एक अच्छा भाग कम्प्यूटर उन्नयन पर खर्च हो रहा है और वे बहुत ही कम लाभांश पर कार्य कर रहे है। अतः वे विवाद पर ज्यादा धन खर्च नही नही करना चाहते ।

मोहन इण्डस्ट्रिज अन्य बड़े निर्माता के साथ आपूर्ति संविदा के लिये बोली लगाने के प्रकिया में है। वह अपनी बोली प्रस्तुत करने में ऑल इण्डिया का उपयोग एक अच्छे संदर्भ के रूप में करना पसंद करेंगे।

मोहन इण्डस्ट्रिज का अध्यक्ष 84 वर्ष का है और उसका स्वास्थ्य अच्छा नही है उसका यह इरादा है कि वह इस कंपनी को अपने को बड़े पुत्र को सौप दे लेकिन इस वैधानिक विवाद के आ जाने से वह अब संदेहास्पद है। वह यह नहीं चाहता कि उसके व्यवसाय के कार्यकाल का अंतिम हिस्सा विवाद में फंस जाये।

ऑल इण्डिया एक्सप्रेस के तथ्य

ऑल इण्डिया एक्सप्रेस (''ऑलइण्डिया'') मध्यस्थता में एक पक्षकार है। ऑल इण्डिया के अधिवक्ता ने यह सलाह दी है कि उन्हे संविदा भंग के लिये मोहन इण्डस्ट्रिज पर वाद दायर करने का अधिकार है और संभवतः न्यायालय में विजय होगी।

ऑल इण्डिया द्वारा यह कहा गया है कि मोहन इण्डस्ट्रिज के साथ विगत दस वर्षो से अच्छा एवं लाभदायक व्यवसायिक संबंध रहा है । प्लास्टिक उत्पाद के लिये मोहन इण्डस्ट्रिज जैसा अन्य कोई आपूर्तिकर्ता उपलब्ध नहीं है। मोहन इण्डस्ट्रिजद्वारा लिया जाने वाला मूल्य युक्तियुक्त है।

ऑल इण्डिया अपने उत्पाद को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रस्तुत करने की प्रकिया में है। ऑल इण्डिया के लिये यह बहुत महत्वपूर्ण है कि आगे के कुछ वर्षों में प्लास्टिक की आपूर्ति में कोई हस्तक्षेप न हो। ऑल इण्डिया 37 वर्ष के युवा द्वारा संचालित की जा रही है जो हाल ही में अपने स्वास्थ्य (मधुमेह) के संबंध में गंभीर आघात से पीड़ित हुआ। वह अपने समय एवं उर्जा को अंतर्राष्टीय विस्तार तथा स्वयं के शारीरिक स्वास्थ्य की ओर केन्द्रित करना पसंद करेगा ।

ऑल इण्डिया के लिये अंतरराष्ट्रीय विस्तार का यह उपयुक्त समय है क्योंकि मुख्य प्रति स्पर्धी, अन्य भारतीय कंपनी, ऐसे विस्तार के लिये अभी तैयार नहीं है (यद्यपि शीघ्र वह तैयार हो जायेगी)।

ऑल इण्डिया ने यह स्पष्ट किया है कि वह अपने ग्राहकों को महत्व देती है और वह चिंतित है कि यदि प्लास्टिक की आपूर्ति विलंब से होना जारी रहा तो वह उन्हें खो देगा ।

अध्याय– 11

गतिरोध

मध्यस्थता के दौरान कभी–कभी पक्षकार एक गतिरोध पर पंहुच जाते हैं। मध्यस्थता में गतिरोध का अर्थ है और इसके अंतर्गत आते हैं, विवाद के हल में रूकावट, भटकाव, समझौते तक पहुंचने में असफलता, काम में आई बाधा, रूकावट, अवरोध या अड़चन। गतिरोध कई कारणों से हो सकता है। यह पक्षकारों के मध्य विद्यमान प्रत्यक्ष मतभेद से होना संभव है। यह व्यवहारिक समाधान की ओर प्रतिरोध, रचनात्मकता का अभाव या सृजनशीलता के क्षय आदि के कारण होना भी संभव है। गतिरोध का प्रयोग विपक्षी पर दबाव बनाने की युक्ति के रूप में भी किया जा सकता है। गतिरोध के वैध एवं न्यायसंगत कारण होना भी संभव है।

गतिरोध के प्रकार

गतिरोधों की प्रकृति के आधार पर निम्न तीन प्रकार के अवरोध होते है :–

(i) भावनात्मक गतिरोध

(ii) वास्तविक गतिरोध

(iii) प्रक्रियात्मक गतिरोध

भावनात्मक गतिरोध निम्नलिखित कारणों से होते हैं :–

- व्यक्तिगत बैर
- अविश्वास
- झूठा घमण्ड
- अड़ियलपन
- अहंकार
- नीचा दिखने का डर
- प्रतिशोध/बदला

वास्तविक गतिरोध निम्नलिखित कारणों से होते हैं:–

- तथ्य एवं विधि के ज्ञान की कमी।
- मामला सुलझाने की इच्छा के वावजूद सीमित संसाधन
- पक्षकारों की अक्षमता (जिसमें विधिक अक्षमता सम्मिलित है)

- तृतीय पक्ष का हस्तक्षेप जो पक्षकारों को मामला न सुलझाने या बाधा पैदा करने को अग्रसर करते हैं।
- विषय से बाहर जा कर समझौते के कारण
- सिद्धांतो पर अड़े रहना, वास्तविकता को नकारना
- पक्षकारों का अपने निश्चय पर डटे रहने की मनोवृत्ति

प्रक्रियात्मक गतिरोध निम्न कारणों से होते हैं।

- प्राधिकारी की बातचीत करने मामला सुलझाने की कमी।
- पक्षकारों के बीच सामर्थ्य का असंतुलन।
- मध्यस्थ पर अविश्वास

गतिरोध उत्पन्न होने के चरण

गतिरोध मध्यस्थता प्रक्रिया के किसी भी चरण में उत्पन्न हो सकता है, जैसे कि प्रारम्भिक एवं प्रस्तावात्मक चरण, संयुक्त सत्र, एकल सत्र, एवं सत्र समापन सत्र।

गतिरोध समाप्त करने/तोड़ने की तकनीक

मध्यस्थत को गतिरोध तोड़ने हेतु स्वंय की रचनात्मकता प्रयोग करते हुये उचित तकनीक का प्रयोग करना चाहिये जिसमें निम्न लिखित तकनीक सम्मिलित हैं।

(a) वास्तविकता का परीक्षण

(b) समस्या सुलझाने का ऐसा तरीका, जिस पर सभी सूझ–बूझ से विचार करें।

(c) प्रस्ताव के श्रोत से ध्यान हटा कर प्रस्ताव के निबन्धनों पर ध्यान केन्द्रित करना।

(d) किसी प्रतिकूल परिस्थिति को निष्क्रिय करने, जानकारी इकट्ठा करने हेतु पक्षकारों को सोचने हेतु अधिक समय देने के लिए पक्षकारों को समझौते हेतु प्रेरित करने हेतु, अन्य ऐसे प्रयोजनों हेतु विराम लेना।

(e) पक्षकारों को उनके सख्त एवं हठधर्मी रवैये के प्रति संसूचित करना एवं चेतावनी देनाकि मध्यस्थ के पास मध्यस्थता को समाप्त करने के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं है।

(f) किसी अन्य व्यक्ति जैसे पति/पत्नी, रिश्तेदार, समान मित्र, शुभ चिन्तक आदि की उपस्थिति, भागीदारी या अन्य प्रकार से सहायता प्राप्त करना।

(g) उपयुक्त परिहास का सावधानी पूर्वक उपयोग।

(h) पक्षकारों ने जो प्रयास किये हैं, उन्हें मान्यता एवं श्रेय देना।

(i) पक्षकारों के मध्य गतिरोध के वास्तविक कारण का पता लगाना एवं गतिरोध का समाप्त करने हेतु पक्षकारों से सुझाव मांगना।

(j) एक पक्षकार को दूसरे पक्षकार की स्थिति में डाल कर उससे यह जानने की कोशिशकरना कि यदि वह दूसरे पक्षकार की स्थिति में होता तो क्या सोचता।

(k) पक्षकारों को उनके भावनाओं एवं उद्गार को व्यक्त करने की अनुमति देना।

(l) संयुक्त सत्र से एकल सत्र तथा एकल सत्र से संयुक्त सत्र में बदलते रहना।

(m) पक्षकारों के आन्तरिक हितों पर ध्यान देना।

(n) पुनः शुरूआत करना।

(o) विकल्पों पर विचार करना।

(p) प्रसंग को बदल कर पुनः प्रसंग पर आना।

(q) शान्ति से चिन्तन करना।

(r) विश्वास बनाये रखना।

(s) बैठक व्यवस्था बदलना।

(t) काल्पनिक परिस्थितियां बनाकर एवं प्रश्नों को पूछ कर पक्षकारों से उनके विकल्प एवं विचार जानना।

अध्याय–12
रेफरल जजों की भूमिका

वह न्यायाधीश जो मामलों को वैकल्पिक विवाद समाधान के किसी माध्यम से समझौते हेतु भेजते हैं, उन्हें रेफरल जज कहा जाता है। मामला निर्दिष्ट किये गये न्यायालयों में रेफरल जज की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। सभी मामले मध्यस्थता के लिये उपयुक्त नहीं होते। केवल वे ही मामले जो मध्यस्थता के लिये उपयुक्त हो, को मध्यस्थता के लिए भेजा जाना चाहिये। मध्यस्थता को सफलता रेफरल जज द्वारा उचित मामले के चयन और उपयुक्त मामले को भेजे जाने पर निर्भर करता है।

वैकल्पिक विवाद समाधान हेतु मामलों का निर्दिष्टीकरण एवं प्रावधनिक आवश्यकता :

व्यवहार प्रक्रिया संहिता 1908 की धारा 89 एवं आदेश 10 नियम 1 ए के अनुसार न्यायालय को पक्षकारों को वैकल्पिक विवाद समाधान हेतु पांच में से कोई एक तरीका चुनने हेतु निर्देशित करना चाहिये और मामले को माध्यस्थम, समझौते, न्यायिक समझौते, लोक अदालत अथवा मध्यस्थता हेतु निर्दिष्ट करना चाहिये। मामले को इस प्रकार निर्दिष्ट करने से पूर्व न्यायालय को यह देखना चाहिये कि क्या पक्षकारों द्वारा कोई तरीका अपनाया गया है और मामले के निपटारे हेतु उक्त तरीका उपयुक्त है अथवा नहीं। न्याय दृष्टान्तों के आलोक में रेफरल जज को समझौते के निबन्धनों को नियत करना आवश्यक नहीं है एवं उन निबन्धनों को पक्षकारों के अवलोकन हेतु प्रस्तुत करना आवश्यक नहीं है। रेफरल जज को स्वयं मामले के तथ्यों को ज्ञात करना मामले में विद्यमान विवाद की प्रकृति को समझाना एवं वैकल्पिक विवाद समाधान की उपयुक्तता का यथार्थपरक मूल्यांकन करना चाहिये।

निर्दिष्टीकरण का चरण

सिविल मामलों में वैकल्पिक विवाद समाधान हेतु मामले को निर्दिष्ट किये जाने हेतु उपयुक्त स्थिति वह है, जबकि अभिवचनपूर्ण हो चुके हो तथा विवाद्यक निर्धारित करने के पूर्व। यदि किसी कारणवश न्यायालय द्वारा मामले को वैकल्पिक विवाद समाधान हेतु विवाधक निर्धारित किये जाने के पूर्व नहीं भेजा जा सका है तो विवाद्यक निर्धारित होने के पश्चात भी मामले को निर्दिष्ट किये जाने पर कोई रोक नहीं है। यद्यपि पारिवारिक मामलों में इस तथ्य को ध्यान में रखते हुये कि आरोप–प्रत्यारोप फाइल किये जाने से पक्षकारों के मध्य सद्भाव और बिगडेगे तथा सम्बन्धों में कटुता आयेगी मामलें को वैकल्पिक विवाद समाधान हेतु निर्दिष्ट करने की आदर्श स्थिति तब होगी जबकि प्रत्यर्थी को समन की तामीली हो गयी हो तथा प्रत्यर्थी द्वारा कोई विरोध या जबाव प्रस्तुत किये जाने के पूर्व। वैकल्पिक विवाद समाधान हेतु मामले को निर्दिष्ट किये जाने का आदेश पक्षकारों और/या उनके अधिवक्ता की उपस्थिति में ही किया जाना चाहिये।

सहमति

व्यवहार प्रक्रिया संहिता की धारा 89 के अन्तर्गत जहां पक्षकारों के मध्य मध्यस्थम का कोई करार पूर्व से न हो वहां मामले को निर्दिष्ट करने हेतु सभी पक्षकारों की सहमति आवश्यक होगी। इसी प्रकार सुलह (Concilistion) हेतु भी व्यवहार प्रक्रिया संहिता की धारा 89 के अंतर्गत केवल सभी पक्षकारों की सहमति से मामला निर्दिष्ट किया जा सकता है। यद्यपि धारा 89 व्यवहार प्रक्रिया संहिता एवं न्याय दृष्टांतों के अनुसार मामले को मध्यस्थता, लोक अदालत एवं न्यायिक समझौते हेतु निर्दिष्ट किये जाने के लिए पक्षकारों की सहमति आवश्यक नहीं होती। सहमति का आभाव कार्यवाही की स्वैच्छिक प्रकृति को प्रभावित नहीं करती क्योंकि पक्षकारों के पास मध्यस्थता की कार्यवाही के दौरान हुये समझौते से सहमत अथवा असहमत होने की स्वतंत्रता होती है।

विचारण में विलम्ब होने से बचना

मध्यस्थता के प्रावधानों का दुरूप्योग कर मामले के विचारण में विलम्ब कारित होने से बचने के लिये रेफरल जज मामला निर्दिष्ट करते समय मामले को आगामी कार्यवाही हेतु विशिष्ट दिनांक को नियत करेगा। यदि उचित पाता है तो मध्यस्थता की कार्यवाही पूर्ण होने हेतु नियमों के अनुसार और उपयुक्त समय देगा।

निर्दिष्टीकरण के लिये मामलों का चुनाव

भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा न्याय दृष्टान्त एफकान्स इन्फ्रासट्रक्चर लिमिटेड एवं अन्य बनाम चेरियन वर्की कन्स्ट्रक्शन कम्पनी प्राईवेट लिमिटेड एवं अन्य (2010)8 सुप्रीम कोर्ट केसेज 24 में प्रतिपारित सिद्वांत के अनुसार सामान्यतया निम्न श्रेणी के मामले वैकल्पिक विवाद समाधान हेतु निर्दिष्ट किये जाने हेतु उपयुक्त नहीं माने जाते हैं:—

i. व्यवहार प्रक्रिया संहिता के आदेश 1 नियम 8 के अन्तर्गत प्रतिनिधि वाद जिसमें सार्वजनिक हित निहित होता है या बहुत से लोगों के जो वाद में पक्षकार नहीं है के हित निहित होते हैं।
ii. लोक कार्यालय के चुनाव से संबधित विवाद।
iii. जांच के उपरांत प्राधिकारी द्वारा अधिकार अनुदत्त किये जाने वाले मामले जैसे कि प्रोवेट या लेटर ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन (प्राधिकार पत्र) से संबंधित वाद
iv. वे मामले जिनमें छल, कूट रचना अथवा कपट के गम्भीर आपराधिक अभियोग हों।
v. वे मामले जिसमें न्यायालय के संरक्षण की आवश्यकता हो उदाहरणार्थ अवयस्क केविरूद्ध दावा, देवी—देवताओं या विकृतचित्त व्यक्ति के विरूद्ध दावा, शासन के विरूद्ध स्वत्व घोषणा के दावे।

vi. वे मामले जिसमें आपराधिक अभियोग शामिल हो।

अन्य सभी सिविल प्रकृति के वाद एवं मामले विशिष्टतया निम्न प्रकृति के मामले वे चाहे सिविल न्यायालय, विशिष्ट अधिकरण अथवा न्यायाधिकरण में लंबित हो वैकल्पिक विवाद समाधान की प्रक्रिया हेतु उपयुक्त होते हें।

(i) सभी व्यापार वाणिज्य एवं करार से सम्बन्धित मामले जिनमें सम्मिलित है–

– संविदा से उत्पन्न विवाद (जिनमें सभी धन संबंधी मामले आते हैं)

– संविदा के विनिर्दिष्ट पालन संबंधी विवाद।

– आपूर्ति वर्ग एवं उपभोक्ता के मध्य विवाद।

– बैंकर एवं उपभोक्ता के मध्य विवाद।

–डेवलपर्स/बिल्डरों एवं ग्राहकों के मध्य विवाद

–मकान मालिकों और किरायेदारों तथा अनुज्ञप्तिदाताओं एवं अनुज्ञप्तिधारियों के मध्य विवाद

–बीमाकर्ता और बीमाधारक के मध्य विवाद

(ii) तनावपूर्ण एवं खटास भरे रिश्तों से उत्पन्न सभी मामले, जिनमें शामिल हैं –

–वैवाहिक कारणों, भरण–पोषण एवं बच्चों की अभिरक्षा से संबंधित विवाद

–पारिवारिक सदस्यों/सहदायिकों/सहस्वामियों के मध्य बटवारे/विभाजन से संबंधित विवाद

–भागीदारों के मध्य भागीदारी से संबंधित विवाद

(iii) उन सभी मामलो में जहां विवादों के बावजूद पहले से मौजूद संबंधो को जारी रखने की आवश्यकता है जिनमें शामिल है–

–पड़ोसियों के मध्य विवाद (सुखाधिकार, अतिक्रमण उत्पात आदि से संबंधित)

– नियोक्ता एवं कर्मचारियों के मध्य विवाद

–सोसाइटियों/संघों/अपार्टमेन्ट मालिको के संघों के सदस्यों के मध्य विवाद

(v) अपचारी दायित्व से सम्बन्धित सभी मामले, जिनमें शामिल हैं–

–मोटर दुर्घटनाओं/अन्य दुर्घटनाओं में प्रतिकर के लिए दावे

(vi) सभी उपभोक्ता विवाद, जिनमें शामिल हैं–

–ऐसे विवाद जिनमें व्यापारी/आपूर्तिकर्ता/निर्माता/सेवाप्रदाता अपने व्यापार/व्यावसायिक प्रतिश्ठा एवं विश्वसनीयता या उत्पाद की लोकप्रियता को बनाये रखने के लिए उत्सुक है।

उपर्युक्त उल्लेखित ''उपयुक्त'' एवं ''अनुपयुक्त'' प्रकरणों का श्रेणीकरण परिपूर्ण एवं कठोर नहीं है, बल्कि दृष्टान्त स्वरूप है जो कि उचित अपवादों अथवा न्यायालयों/न्यायाधीशगणों द्वारा अपने क्षेत्रान्तर्गत/विवेक का उपयोग करते हुए ए0डी0आर0 प्रक्रियाओं के लिए अन्य मामलों को भी रेफर किये जाने के अधीन हैं।

उपर्युक्त वर्णित वर्गीकरण के बावजूद एक रैफरल न्यायाधीश को प्रत्येक मामले के तथ्य एवं परिस्थितियों के सन्दर्भ में उसकी उपयुक्तता पर स्वतंत्र रूप से विचार करना चाहिए।

मध्यस्थता के लिए पक्षकारों को प्रेरित और तैयार करना

रैफरल न्यायाधीश मध्यस्थता के माध्यम से पक्षकारों को अपने विवादों को हल करने के लिए प्रेरित करने में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यद्यपि पक्षकार मध्यस्थता के लिए सहमत होने के लिए इच्छुक न हों फिर भी रैफरल न्यायाधीश उनको मध्यस्थता के लिये राजी एवं प्रेरित करने हेतु उनकी अनिच्छा का पता लगाने का प्रयास कर सकते हैं। रैफरल न्यायाधीश को मध्यस्थता की अवधारणा, प्रक्रिया और उसके फायदों के बारे में पक्षकारों को बताना चाहिए कि किस प्रकार से मध्यस्थता उन पक्षकारों के अंतर्निहित हित की तुश्टि कर सकता है। यहाँ तक कि जब कोई मामला मध्यस्थता के लिए पूर्णतः उपयुक्त नहीं है, तब भी रैफरल न्यायाधीश विवाद में अंतर्निहित किसी मुद्दे को मध्यस्थता के लिए रेफर करने के संबंध में विचार कर सकता है।

रैफरल आदेश

मध्यस्थता प्रक्रिया एक रैफरल आदेश के माध्यम से प्रारंभ की जाती है, रैफरल जज को मध्यस्थता प्रक्रिया में रैफरल आदेश के महत्व को समझना चाहिए एवं आदेश पारित करते समय लापरवाह दृष्टिकोण नहीं अपनाना चाहिए। रैफरल आदेश न्यायालय द्वारा रेफर किये गये मध्यस्थता की नींव है। एक आदर्श रैफरल आदेश में अन्य बातों के साथ साथ रैफरल जज का नाम, प्रकरण क्रमांक, पक्षकारों के नाम, प्रकरण के संस्थित किये जाने के तारीख और वर्ष, विचारण का चरण, विवाद की प्रकृति, विधिक प्रावधान जिसके अंतर्गत प्रकरण रैफर किया गया है, रैफरल न्यायालय के समक्ष सुनवाई की आगामी तिथि, क्या पक्षकारों ने मध्यस्थता के लिए सहमति दी है, संस्था/मध्यस्थ का नाम जिसे प्रकरण मध्यस्थता के लिए भेजा गया है, दिनांक एवं समय जब पक्षकारों को

संस्था/मध्यस्थ के समक्ष उपस्थित होना है, मध्यस्थता पूर्ण होने की समय सीमा, शुल्क/पारिश्रमिक की मात्रा यदि भुगतान किया जाना है, तथा पक्षकारों एवं उनके अधिवक्ताओं के पते एवं टेलीफोन नंबरों का उल्लेख होना चाहिए।

मध्यस्थता के समापन के पश्चात् की भूमिका

मध्यस्थता के समापन के पश्चात् भी रैफरल न्यायाधीश महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। विवाद भले ही मध्यस्थता के लिए रेफर किया गया था, किंतु उस मामले पर न्यायालय का ही नियंत्रण एवं क्षेत्राधिकार होता है तथा मध्यस्थता का परिणाम, पारिणामिक आदेश पारित करने हेतु न्यायालय के समक्ष रखा जाना होगा। मध्यस्थता के प्रतिवेदन पर विचार करने के पूर्व रैफरल न्यायाधीश न्यायालय में अपने समक्ष पक्षकारों अथवा उनके प्राधिकृत प्रतिनिधियों की उपस्थिति सुनिश्चित करेगा।

यदि पक्षकारों के मध्य कोई समझौता नही होता है, तो न्यायालय की कार्यवाही विधि अनुसार जारी रहेगी। यह सुनिश्चित करने के लिए कि मध्यस्थता प्रक्रिया की गोपनीयता भंग नहीं हुई है, रैफरल न्यायाधीश को समझौते के पक्षकारों से विफलता के कारण नही पूछना चाहिए, और न ही पक्षकारों या उनके अधिवक्ताओं को ऐसे कारणों का खुलासा न्यायालय में करने की अनुमति देनी चाहिए। यद्यपि पक्षकारों के मध्य समझौते के संभावनाओं का पता लगाने का विकल्प रैफरल न्यायाधीश के समक्ष उपलब्ध रहता है। मध्यस्थता प्रक्रिया की गोपनीयता की रक्षा के लिए, मध्यस्थता प्रक्रिया के दौरान या बाद में या मध्यस्थता के संबंध में रैफरल न्यायाधीश एवं मध्यस्थ के मध्य कोई बात चीत नही होनी चाहिए।

यदि विवाद मध्यस्थता में तय किया गया है तो रैफरल जज को यह जांच करनी चाहिए कि क्या पक्षकारों के मध्य समझौता विधिपूर्ण एवं प्रवर्तनीय है। यदि अनुबंध अवैध या अप्रवर्तनीय पाया जाता है, तो यह पक्षकारों के संज्ञान में लाया जायेगा, एवं रैफरल न्यायाधीश को ऐसे अनुबंध पर कार्यवाही करने से प्रतिविरत रहना चाहिए। यदि अनुबंध विधिपूर्ण एवं प्रवर्तनीय पाया जाता है तो रैफरल न्यायाधीश को अनुबंध के नियमों और शर्तो पर कार्य करना चाहिए एवं पारिणामिक आदेश पारित करना चाहिए। पक्षकारों के मध्य समझौते को लागू करने में कोई तकनीकी या प्रक्रियात्मक बाधा आने पर रैफरल न्यायाधीश पक्षकारों की सहमति से समझौते की भार्तो को परिवर्तित या संशोधित करने के लिए स्वतंत्र है।

अध्याय–13

मध्यस्थता में अधिवक्ताओं की भूमिका

वैकल्पिक विवाद समाधान के साधन के रूप में मध्यस्थता ऐसी प्रक्रिया है, जहां पक्षकार अपने विवादों को सम्प्रेषित करने, बातचीत करने और निपटाने के लिये एक तटस्थ सहायक जैसे मध्यस्थ की सहायता से प्रोत्साहित किये जाते है। यद्यपि मध्यस्थता में अधिवक्ता की भूमिका उसकी मुकदमे में भूमिका से कार्यात्मक रूप से भिन्न होती है। अधिवक्ता द्वारा अपने पक्षकार को मध्यस्थता प्रक्रिया के दौरान दी गई सेवा एक व्यावसायिक सेवा है। चूंकि मध्यस्थता प्रक्रिया में अधिवक्ता सक्रिय भूमिका निभाते है, इसलिये उन्हें मध्यस्थता की परिकल्पना और प्रक्रिया की जानकारी होना चाहिये एवं मध्यस्थता में पक्षकारों की सहायता करते समय उन्हें सकारात्मक भूमिका निभानी चाहिये। प्रकरण के न्यायालय में आने से पूर्व ही अधिवक्ता की भूमिका प्रारम्भ हो जाती है तथा मध्यस्थता प्रक्रिया के दौरान एवं यहां तक कि उसके पश्चात् भी अधिवक्ता की भूमिका बनी रहती है, चाहे विवाद का निपटारा हुआ हो या नहीं। मध्यस्थता की परिकल्पना एवं प्रक्रिया, मध्यस्थता के लाभ तथा मध्यस्थता प्रक्रिया में अधिवक्ताओं की भूमिका के सम्बन्ध में उन्हें जागरुक करने के लिये जागरुकता कार्यक्रम आव यक है। मध्यस्थता में अधिवक्ताओं की भूमिका को तीन चरणों में विभक्त किया जा सकता है:–

i. मध्यस्थता के पूर्व

ii. मध्यस्थता के दौरान

iii. मध्यस्थता के पश्चात्।

1. मध्यस्थता के पूर्व:–

किसी भी विवाद के उत्पन्न होने पर एवं अनुतोष प्राप्त करने के लिये किसी निर्णायक मंच तक पहुँचने के लिये पक्षकार प्रथमतः अधिवक्ता से सम्पर्क करते हैं। अधिवक्ता को सर्वप्रथम यह विचार करना चाहिये कि क्या विवाद को वैकल्पिक विवाद समाधान तंत्र के माध्यम से निपटाया जा सकता है। जहाँ मध्यस्थता वैकल्पिक विवाद समाधान हेतु उपर्युक्त माध्यम के रूप में विचार किया जाता है, वहां पक्षकारों को मध्यस्थता की संकल्पना, प्रक्रिया एवं लाभों के बारे में शिक्षित किया जाना मध्यस्थता की तैयारी का एक महत्वपूर्ण चरण हो जाता है। अपने पक्षकार को मध्यस्थ की एक सहायक के रूप में भूमिका समझाने के लिये अधिवक्ता सर्वोत्तम व्यक्ति है। वह अपने पक्षकार को यह समझाने में सहायता करता है कि मध्यस्थता का उद्देश्य केवल विवाद का समाधान एवं मुकदमें का निराकरण नहीं है, बल्कि वह पक्षकारों की आवश्यकता पता करता है एवं उनके

अन्तर्निहित हित की सन्तुष्टि के लिये रचनात्मक समाधान की खोज करता है। अधिवक्ता, पक्षकारों को उनके रवैये को प्रतिकूल से सहयोगी में बदलने में सहायता कर सकता है। पक्षकारों को यह जानकारी दी जानी चाहिये कि रिश्तों के टूटने से जुड़े विवाद में उनके सम्बन्ध चाहे व्यक्तिगत हों, संविदात्मक हों या वाणिज्यिक हों, मध्यस्थता रिश्ते को मजबूत बनाने/बहाल करने में सहायता करती है। पक्षकार को उसके मामले की विधिक स्थिति, मजबूती एवं कमजोरी का आंकलन करने तथा मुकदमे के सम्भावित परिणाम को समझने में सहायता करते समय अधिवक्ता उसे अपनी वास्तविक जरूरतों एवं उसके अन्तर्निहित हित का एहसास कराता है जो कि मध्यस्थता के माध्यम से बेहतर तरीके से पूर्ण हो सकता है।

2. मध्यस्थता के दौरानः—

मध्यस्थता के दौरान भी अधिवक्ताओं की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। मध्यस्थता में अधिवक्ताओं की भागीदारी प्रायः रचनात्मक होती है, किन्तु कभी—कभी यह असहयोगी एवं हतोत्साहित करने वाली भी हो सकती है। अधिवक्ता की मनोदृष्टि एवं आचरण उसके पक्षकार की मनोदृष्टि एवं आचरण को प्रभावित करता है, इसलिये मध्यस्थता की सफलता एवं पक्षकारों के मध्य सार्थक बातचीत सुनिश्चित करने के लिये अधिवक्ता को सकारात्मक दृष्टिकोण रखना चाहिये तथा उसे मध्यस्थता प्रक्रिया एवं मध्यस्थ पर विश्वास होना चाहिये, मध्यस्थ के साथ—साथ दूसरे पक्षकार तथा उसके अधिवक्ता के लिये सम्मान प्रदर्शित करना चाहिये। अधिवक्ता को मध्यस्थ के द्वारा बताये गये मध्यस्थता के मूल नियम का पालन करना चाहिये एवं पक्षकार को भी उनको पालन करने की सलाह देनी चाहिये। अधिवक्ता की तथ्यों, विधि एवं न्यायदृष्टान्तों पर तैयारी होनी चाहिये। साथ ही उन्हें मध्यस्थ के समक्ष अपना पक्ष प्रस्तुत करने के लिये पक्षकार को तैयार एवं प्रोत्साहित करना चाहिये। यह दृष्टिगत रखते हुए किपक्षकार हमेशा पूर्ण एवं सही तथ्यों को निर्दिष्ट करने या सम्बन्धित दस्तावेजों को सन्दर्भित करने में सक्षम नहीं हो सकते है, अधिवक्ता को उन्हें सहायता देने के लिये तैयार और सतर्क रहना चाहिये। बाटना/वाटना/मलाटना विश्लेषण का उपयोग करके वास्तविकता परीक्षण की सहायता से अधिवक्ता को पक्षकारों के मामले और मध्यस्थता की प्रगति का निरन्तर मूल्यांकन करना चाहिये एवं पक्षकार को उसकी स्थिति, दृष्टिकोण, मांगों और रियायतों की सीमा को बदलने की सलाह देने के लिये तैयार रहना चाहिये। जब अधिवक्ताओं के साथ एक उप—सत्र लिया जाना आवश्यक समझा जाये तब मध्यस्थ अधिवक्ताओं के साथ ऐसा उप—सत्र ले सकता है तथा अधिवक्ताओं को प्रक्रिया को आगे बढ़ाने एवं समझौते तक पहुंचने के लिये मध्यस्थ का सहयोग करना चाहिये। अधिवक्ताओं के साथ ऐसे उप—सत्र

पक्षकार अथवा उसके अधिवक्ता के अनुरोध पर भी लिये जा सकते हैं। अधिवक्ता पक्षकारों के मध्य समझौते को अन्तिम रूप देने और उसके प्रारूपण में भाग लेता है। उसे यह सुनिश्चित करना चाहिये कि अभिलिखित किया गया समझौता पूर्ण, स्पष्ट एवं निष्पादन योग्य हो। उसे अपने पक्षकार को समझौते की प्रत्येक भार्त को समझाना भी चाहिये।

3. **मध्यस्थता पश्चात्–**

मध्यस्थता के समापन के पश्चात् भी अधिवक्ता एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यदि कोई समझौता नहीं हुआ है तो उसे पक्षकार को या तो मुकदमे को जारी रखने अथवा अन्य वैकल्पिक विवाद समाधान तंत्र के चयन के लिये सहायता एवं मार्गदर्शन देना होता है।

यदि मध्यस्थ के समक्ष पक्षकारों के मध्य समझौता हो गया है तो अधिवक्ता का यह उत्तरदायित्व है कि वह अपने पक्षकार को उसके फैसले की उपयुक्तता के सम्बन्ध में आश्वस्त करे एवं अन्य किसी प्रतिकूल विचार के विरुद्ध सलाह दे। समझौते की भावना को बनाये रखने के लिये अधिवक्ता को समझौते की शर्तों के अनुसार पारित आदेश/डिक्री के निष्पादन में न्यायालय का सहयोग करना चाहिये।

अध्याय—14

मध्यस्थता में पक्षकारों की भूमिका

मध्यस्थता एक ऐसी प्रकिया है जिसमें विवाद के मैत्रीपूर्ण समझौते तक पहुंचने में पक्षकारों की प्रत्यक्ष, सकिय एवं निर्णयात्मक भूमिका होती है।

यद्यपि पक्षकारों को उनके अधिवक्ता एवं तटस्थ मध्यस्थ की सहायता प्राप्त होती है, किन्तु अन्तिम निर्णय पक्षकारों का होता है। जहां तक पक्षकारों का सम्बन्ध है, मध्यस्थता की सम्पूर्ण प्रक्रिया स्वैच्छिक है। यद्यपि मध्यस्थता के लिये प्रकरण को रैफर किये जाने के लिये पक्षकारों की सहमति आज्ञापक नहीं है, तथापि मध्यस्थता में पक्षकारों की भागीदारी आवश्यक होती है। मध्यस्थता स्वैच्छिक है, क्योंकि पक्षकार विवाद को मैत्रीपूर्ण समझौते से निपटाना चाहते हैं या नहीं, मध्यस्थता के समझौते की क्या भार्ते होंगी, यह तय करने का अधिकार पक्षकारों के पास सुरक्षित रहता है। न तो मध्यस्थ और न ही अधिवक्ता पक्षकारों के लिये निर्णय ले सकते हैं और उन्हें पक्षकारों के स्वयं निर्णय लेने के अधिकार को मान्यता एवं सम्मान देना चाहिये।

मध्यस्थता की प्रक्रिया के दौरान पक्षकारों को अपने हितों पर न कि अपने हक एवं विधिक तकनीकियों पर ध्यान देना चाहिये।पक्षकार मध्यस्थता के सम्बन्ध में अधिवक्ताओं की सेवाएं लेने के लिये स्वतंत्र रहते हैं।

मध्यस्थता संवाद, राजी होने एवं समझौते के लिये राजी होने के सम्बन्ध में होती है, इसलिये प्रत्येक पक्षकार के लिये आवश्यक है कि वह अपना दृष्टिकोण दूसरे पक्ष को बताये एवं बदले में उसका पक्ष जानने के लिये तैयार रहे। बोलना और सुनना दोनों बराबर महत्वपूर्ण हैं। प्रयास वाद—विवाद एवं हराने के लिये नहीं होना चाहिये, बल्कि जानने और बताने के लिये होना चाहिये। पक्षकार अपनी स्थिति बदल सकते हैं और उसे अपने सर्वोत्तम हित के लिये संरेखित कर सकते हैं।

मध्यस्थता में मध्यस्थ पर विश्वास आवश्यक है, इसलिये मध्यस्थ ऐसा व्यक्ति होना चाहिये, जिस पर पक्षकार विश्वास रखते हों।

एक समझौता जो मध्यस्थता में दोनों पक्षकारों द्वारा निश्चित होता है पक्षकारों पर बाध्य है और पक्षकार समझौते की शर्तों के अधीन पारित की गई डिकी/आदेश के निष्पादन में सहयोग हेतु बाध्य है।